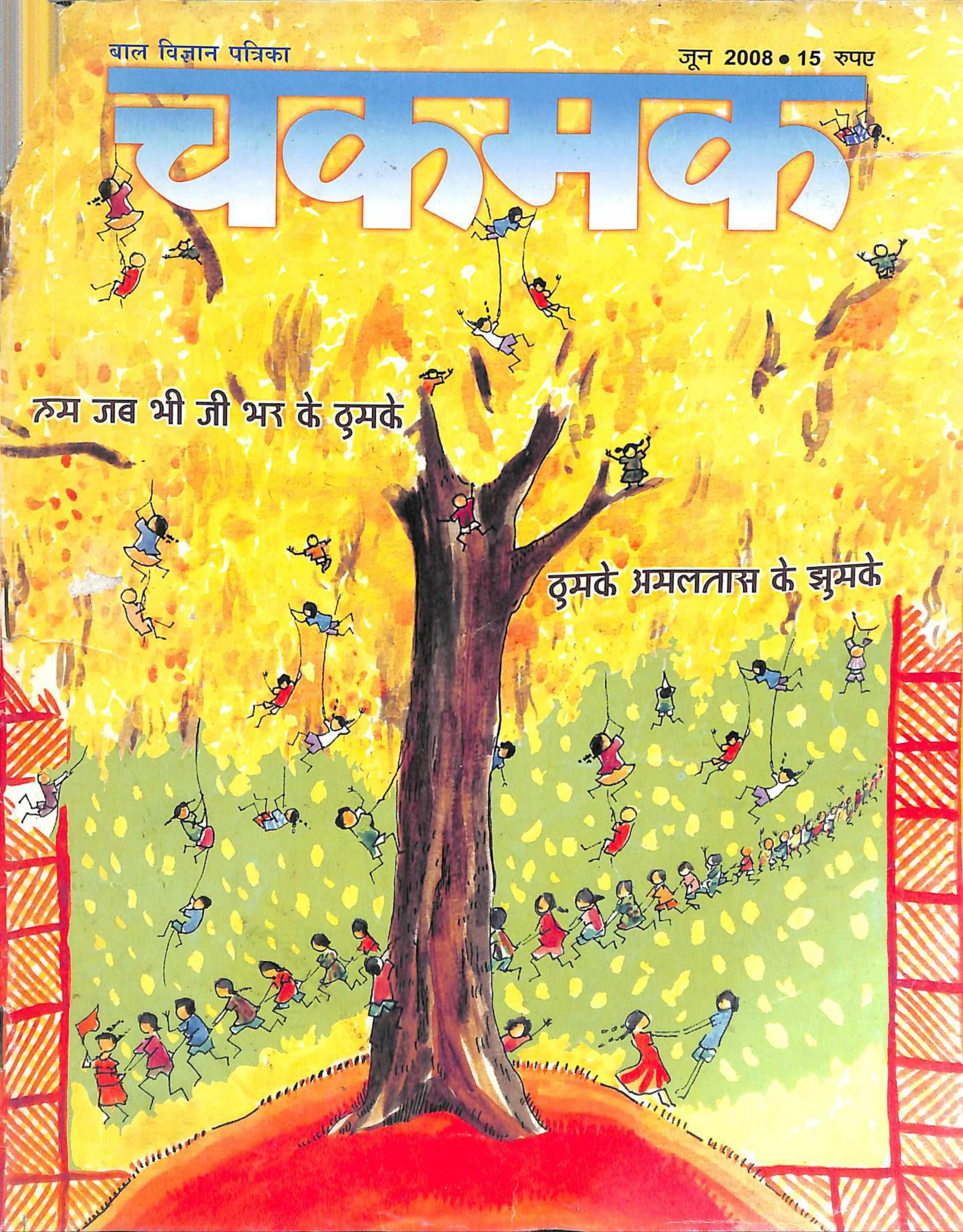
बाल विज्ञान पत्रिका
जून 2008 • 15 रुपए

चकमक



कुछ दिनों पहले भोपाल में सांस्कृतिक कार्यक्रम लोकरंग में देश-विदेश के सैंकड़ों बिजनों की प्रदर्शनी लगी। पेश है इस प्रदर्शनी की एक झलक।



ठहरी हुई हवा को बिजना (यानी हाथ का पंखा) ही चलाता है। चाहे वह मोर पंख का बना हो, खजूर के पत्तों का बना हो, चाहे बाँस का। उरई की सींकों को रंगीन धागों में बुनकर। फिर उसमें रंगीन कपड़े की किनारी और झालर लगाकर सुन्दर बिजने बुने जाते हैं।

औरतें अपने आँचल का बिजना बना लेती हैं। बच्चे अपनी चौसठ पेज की कॉपी का। जब कभी बिजना नहीं मिलता तो दुबली पत्रिकाएँ, अखबार, पुरानी कॉपी की जिल्द बिजना बन जाती है। गर्मी से थोड़ी-सी राहत के लिए जेब में रखा हुआ रुमाल भी तो बिजना बन जाता है। और तो और, हमारी ही कमीज़ या कुरते का आखिरी सिरा भी बिजना बन जाता है।

पशुओं में पूँछ के झौंरें (बाल) बिजना बन जाते हैं। हाथी को अपने कान चलाते हुए देखो तो लगता है जैसे उसने अपने कानों को ही बिजना बना लिया है। गाँवों में मोटी-मोटी गिलकियों को चीरकर फिर उसे चौड़ाकर सुखा लिया जाता है। इसमें रंग भरकर और सुन्दर गोटा-किनारी लगाकर भी बिजना बनाए जाते हैं।

(ध्रुव शुक्ल के बिजना लेख का एक अंश)








चकमक

बाल विज्ञान पत्रिका • 261 • जून 2008

इस अंक में...

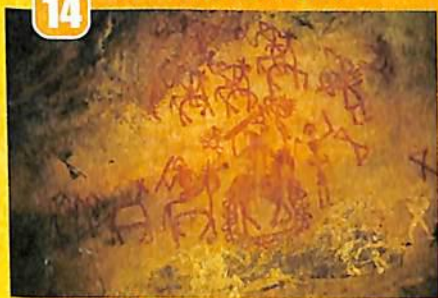
5



8



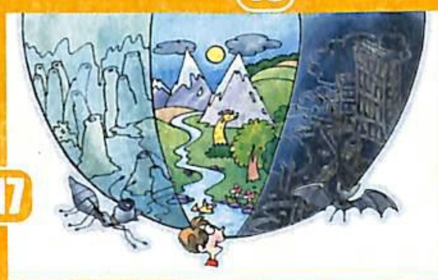
14





10

17



35



27



40



आवरण: कनक

सम्पादन
सुशील शुक्ल
शशि सबलोक

सम्पादकीय सलाहकार
रेक्स डी रोज़ारियो
तेजी ग्रोवर

विज्ञान सलाहकार
सुशील जोशी

डिज़ाइन
अतनु राय
डिजिटल एक्सप्रेशन्स

वितरण
अनिल लोखण्डे

सहयोग
कविता तिवारी
मिहिर
प्रीति चौहान
कमलेश यादव

सदस्यता शुल्क
एक प्रति - 15.00
वार्षिक - 150.00
दो साल - 275.00
तीन साल - 400.00
आजीवन - 3000.00

सभी डाक खर्च हम देंगे। चन्दा (एकलव्य के नाम से बने) मनीऑर्डर/चैक से भेज सकते हैं। भोपाल के बाहर के चैक में 80.00 रुपए अतिरिक्त जोड़ें।

एकलव्य
ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर
भोपाल, म.प्र. 46 2016
फोन: (0755) 2671017, 2550976, 6549033
फैक्स: (0755) 2551108
chakmak@eklavya.in
www.eklavya.in



प्रिय दोस्तो,

जो हमें पढ़ाते-सिखाते हैं, उनको याद करने के लिए साल में एक दिन तय है न? शिक्षक दिवस। ऐसे और भी कई दिन याद आ जाएँगे। चाहो तो उनकी एक सूची ही बना डालो। इसमें एकाध दिवस ऐसा भी होगा, जिसे मनाना चाहिए या नहीं, इसी को लेकर विवाद मचता है, तोड़-फोड़ भी हो जाती है।

एक दिवस बस आने ही वाला है – 5 जून, "पर्यावरण दिवस"। यह "पर्यावरण" किस चिड़िया का नाम है। चलो इसे फिर समझेंगे – अभी तो बस इतना ही कि यह दिवस अपने घर की चिन्ता करने का दिन है। अपना घर? हाँ, अपने घर में जितने भी लोग रहते हैं, उनका ठीक प्रबन्ध है या नहीं। सबको खाना-पीना, साफ हवा, साफ पानी, काम के लिए ठीक उजाला, आराम के लिए छाया, हल्ला-गुल्ला नहीं – सब बुनियादी ज़रूरतें पूरी हो रही हैं या नहीं – इसे देखना पड़ता है न? माँ ने जितना खाना बनाया, वह सब सदस्यों में ठीक से बँट जाएगा, ऐसा तो नहीं कि कोई लाड़ला बेटा-बेटी औरों का हिस्सा भी हड़प जाए।

इसी तरह ज़रा अपने स्कूल के बारे में सोचो। जिस कक्षा में हम आज बैठते हैं, उसमें हमसे पहले भी कई छात्र-छात्राएँ बैठे होंगे। इसी तरह हमारे बाद भी हमारी इस कक्षा में हमसे पहली वाली कक्षा के दोस्त आएँगे। उन सबको ठीक बैठने की जगह मिले, रोशनी, हवा, ब्लैक बोर्ड, चॉक, कॉपी-किताब, बिजली-पानी सब उसी तरह मिले, जैसे हमें मिला है। ऐसा न हो कि हम जाते-जाते अपनी कक्षा को इतना बिगाड़ दें कि आने वाली कक्षा उसमें बैठ ही न पाए।

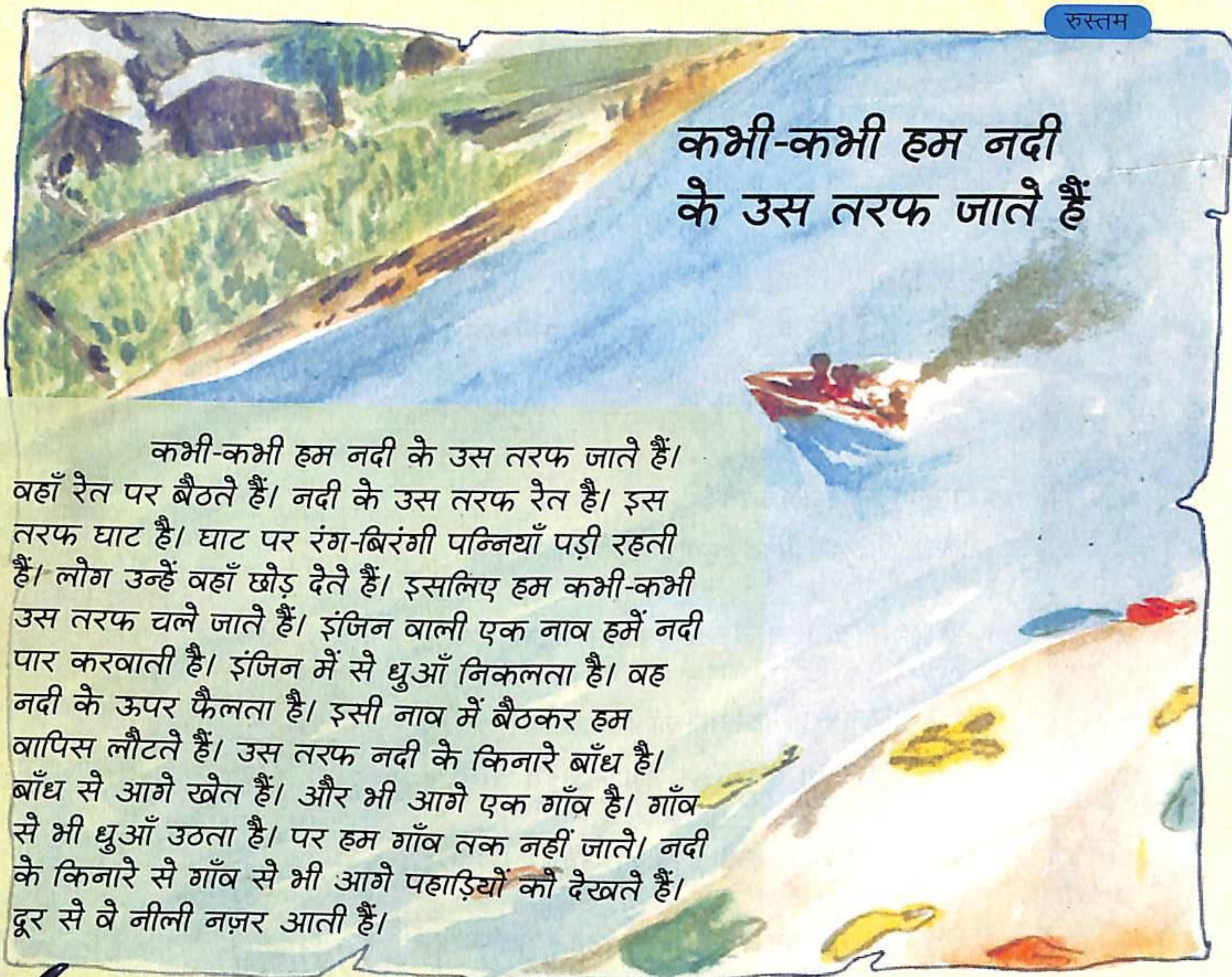
बस समझो यही है – घर यानी धरती का पर्यावरण। हमसे पहले भी कई पीढ़ियाँ यहाँ आई हैं और हमारे बाद भी कई पीढ़ियाँ आएँगी। उन सबके लिए आज हम सबको साफ हवा, पानी, खाना-पीना, कपड़ा, उजाला, बिजली, घर, पेड़, जंगल, नदी, पहाड़, खेत-खलिहान, नीला आसमान और न जाने क्या-क्या, सब कुछ हमेशा ठीक रखना है। मान लो हमारी पीढ़ी ने इस धरती की, अपने इस देश की, अपने शहर की, गाँव की हवा को कारखानों के ज़हरीले धुँए से, ज़हरीली गैस से खराब कर दिया, सारा पानी प्रदूषित कर दिया तो आने वाले क्या करेंगे, कैसे जिएँगे? जगह-जगह बड़े-बड़े बाँध बना दिए, खूब जंगल काट डाले, खेतों का उपजाऊपन नष्ट कर दिया तो आने वाली पीढ़ियाँ क्या करेंगी? कैसे ज़िन्दा रहेंगी?

इसलिए इस बार जब 5 जून, पर्यावरण दिवस आए तो हमारे जीवन को चलाने वाली इन सब बातों को आपस में बैठकर समझो, समझाओ। इस घर की, इस धरती की सुन्दर साज-सम्भाल कैसे होगी यह सीखना होगा हमें। हाँ जो इस धरती को बिगाड़ रहे हैं, पर्यावरण बिगाड़ रहे हैं, उन्हें भी पहचानना होगा, समझाना होगा और ज़रूरत पड़े तो उन्हें सबक भी सिखाना होगा।

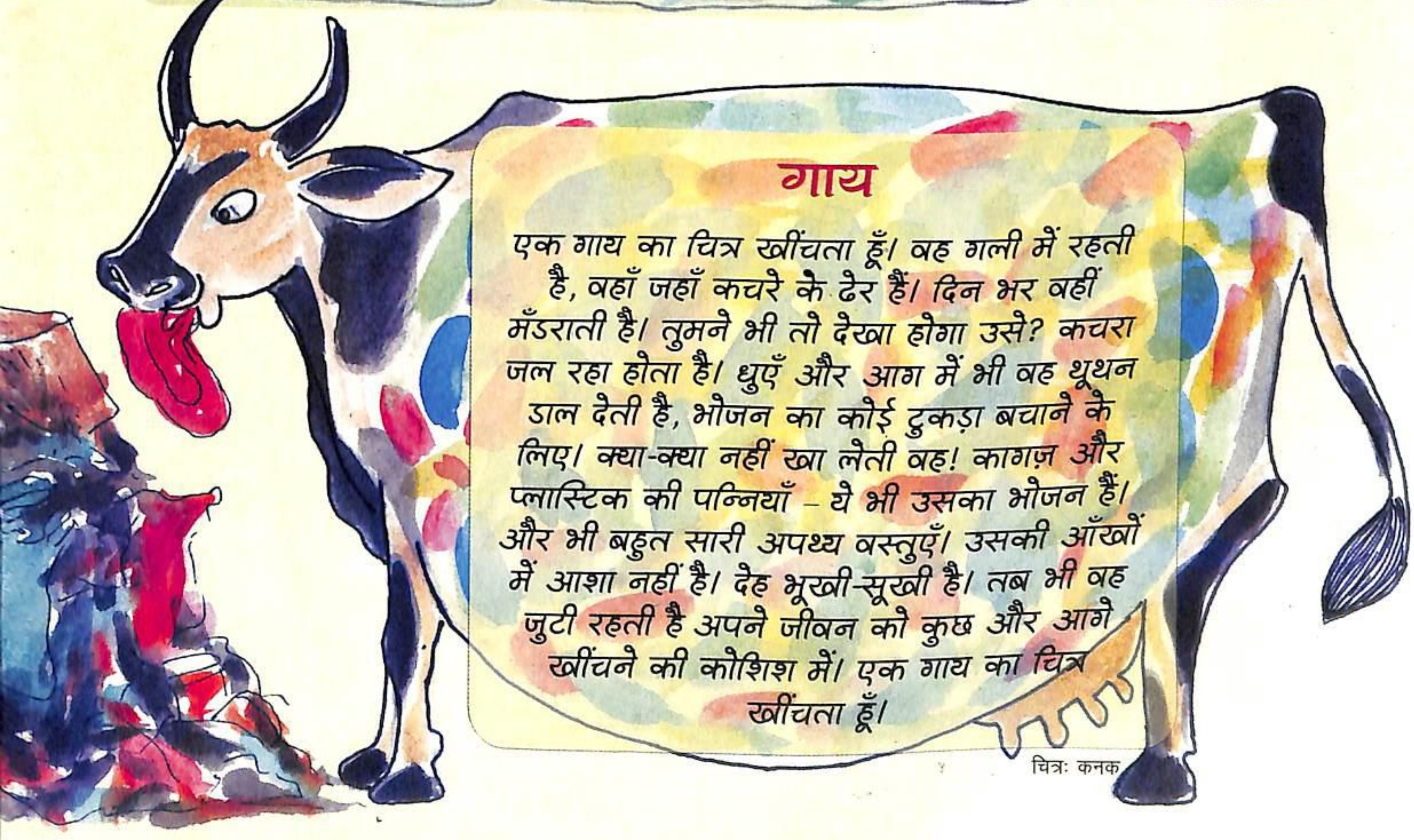
अनुपम मिश्र

अनुपम मिश्र मशहूर गाँधीवादी और सक्रिय पर्यावरणकर्मी हैं। आपने जल सहेजने की प्राचीन भारतीय प्रणालियों का गहरा अध्ययन किया है। वर्तमान में आप गाँधी शान्ति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली के पर्यावरण कक्ष के निदेशक हैं।

कभी-कभी हम नदी के उस तरफ जाते हैं



कभी-कभी हम नदी के उस तरफ जाते हैं। वहाँ रेत पर बैठते हैं। नदी के उस तरफ रेत है। इस तरफ घाट है। घाट पर रंग-बिरंगी पन्नियाँ पड़ी रहती हैं। लोग उन्हें वहाँ छोड़ देते हैं। इसलिए हम कभी-कभी उस तरफ चले जाते हैं। इंजिन वाली एक नाव हमें नदी पार करवाती है। इंजिन में से धुआँ निकलता है। वह नदी के ऊपर फैलता है। इसी नाव में बैठकर हम वापिस लौटते हैं। उस तरफ नदी के किनारे बाँध है। बाँध से आगे खेत हैं। और भी आगे एक गाँव है। गाँव से भी धुआँ उठता है। पर हम गाँव तक नहीं जाते। नदी के किनारे से गाँव से भी आगे पहाड़ियों को देखते हैं। दूर से वे नीली नज़र आती हैं।



गाय

एक गाय का चित्र खींचता हूँ। वह गली में रहती है, वहाँ जहाँ कचरे के ढेर हैं। दिन भर वहीं मँडराती है। तुमने भी तो देखा होगा उसे? कचरा जल रहा होता है। धुएँ और आग में भी वह थूथन डाल देती है, भोजन का कोई टुकड़ा बचाने के लिए। क्या-क्या नहीं खा लेती वह! कागज़ और प्लास्टिक की पन्नियाँ - ये भी उसका भोजन हैं। और भी बहुत सारी अपथ्य वस्तुएँ। उसकी आँखों में आशा नहीं है। देह भूखी-सूखी है। तब भी वह जुटी रहती है अपने जीवन को कुछ और आगे खींचने की कोशिश में। एक गाय का चित्र खींचता हूँ।

चित्रः कनक

आवाज़ों की दुनिया

प्रभात झा

हम सब आवाज़ों की दुनिया में रहते हैं। हमारे दिन की शुरूआत भी किसी न किसी आवाज़ के साथ होती है। घड़ी का अलार्म, मुर्गे, माँ की या कोई भी आवाज़ हमें जगा देती है। फिर हमारा हर पल कितनी ही आवाज़ों के बीच से गुज़रता है। कुछ आवाज़ों में एक कशिश होती है, जो एकदम से हमारा ध्यान अपनी ओर खींच लेती हैं।

चलो सुनने का रियाज़ करते हैं:

- किसी जगह दस मिनट चुपचाप बैठकर आवाज़ें सुनते हैं।
- घर की आवाज़ें, बाज़ार की आवाज़ें, स्टेशन की आवाज़ें....... कौन-सी आवाज़ें दिलकश लगती हैं?
- कुछ आवाज़ों से तो दूर भागने का मन करता है।
- कोई ऐसा शख्स है जिसकी आवाज़ सबसे अच्छी लगती है।
- कुछ आवाज़ें उदास करती हैं तो कुछ बेचैन कर देती हैं।
- कुछ आवाज़ों को हम अनसुना करते रहते हैं और कुछ को कान लगाकर सुनने की कोशिश करते हैं।

कोई दिन तो ऐसा भी जाता है **जब सबकी बातें सुनना पड़ती हैं?**

दो जापानी हाइकू

मकड़ी, यह
तुम्हारी आवाज़ है – या
पतझड़ की हवा?

–बाशो

सिर्फ एक चहकते
कीड़े ने मुझे बताया कि रात है,
इतना चमक रहा था चाँद।

–एत्सुजिन्



चित्रः कनक

स्वयंप्रकाश

बेर की गुठली

प्यारे भाई रामसहाय,

एक बार मैं बेर खा रहा था कि गुठली मेरे पेट में चली गई। मैंने कुसुम मौसी को बताया। कुसुम मौसी ने डराते हुए कहा, "बेर की गुठली पेट में चली गई? तू सच बोल रहा है? बस बच्चू! ठहर जा। अब कुछ रोज़ बाद तेरे सिर पर बेर का पेड़ उग जाएगा!" मुझे विश्वास नहीं हुआ। मैंने सोचा ऐसा कैसे हो सकता है? मैंने पूछा, "आपने देखा है कोई ऐसा आदमी जिसके सिर पर बेर का पेड़ उग गया हो?" उन्होंने बड़े विश्वास से कहा, "हाँ-हाँ! तुझे भी दिखा दूँगी किसी दिन!"

दूसरे दिन घर से स्कूल जाते समय मैं पूरे रास्ते हर आदमी का सिर ध्यान से देखता रहा, लेकिन किसी के सिर पर मुझे बेर का पेड़ उगा हुआ दिखाई नहीं दिया। हाँ, एक मोटा-सा लड़का ज़रूर दिखाई दिया जिसने सिर पर टोपी पहन रखी थी। मैंने सोचा हो सकता है इसने भी बेर की गुठली निगल ली हो और जब सिर पर पेड़ उग आया तो अब उसे छिपाने के लिए टोपी पहनना शुरू कर दिया है।

कुछ रोज़ बाद हमारी गली से एक बारात निकल रही थी। दूल्हा घोड़ी पर बैठा था। आगे बैण्ड, पीछे बाराती। दूल्हे ने अपने सिर पर खजूर के पत्तों से बना मोर-मुकुट पहन रखा था, जैसा कि मालवा में उन दिनों रिवाज़ था। कुसुम मौसी ने आवाज़ देकर मुझे गैलरी में बुलाया और कहा, "देख ! इसने भी बेर की गुठली निगल ली थी। उग गया न इसके सिर पर बेर का पेड़?" मैंने ध्यान से देखा। दूल्हे की खजूर की पगड़ी मुझे सचमुच बेर के पेड़ जैसी लग रही थी।

मैं कल्पना करने लगा कि मेरे सिर पर बेर का पेड़ उग गया है और मैं बालों में कँघी नहीं कर पा रहा हूँ। कमीज़ भी ध्यान से पहनता हूँ कि सिर पर उगे बेर के काँटों में न उलझ जाए! मैंने अपनी कल्पना की आँखों से देखा कि कुछ रोज़ बाद पेड़ थोड़ा बड़ा हो गया है। जब नहाता हूँ तो पेड़ को पानी मिलता है। अब पेड़ में लाल-लाल बेर लग गए हैं और उन्हें तोड़ने के लिए छोटे-छोटे बच्चे मेरे सिर से लटक रहे हैं। कोई दाहिने झुकाता है कोई बाएँ, कोई आगे झुकाता है तो कोई पीछे!

एक रात सपना आया कि मैं स्कूल जा रहा हूँ और रास्ते में एक कटखनी गाय मेरे पीछे पड़ गई है। उसे बेर खाने हैं। गाय नथुने फुलाए, सींग आगे किए मेरी तरफ दौड़ पड़ी है ...... और मैं उससे जान छुड़ाने के लिए जी-जान से भागा जा रहा हूँ। मैं जहाँ भी जा रहा हूँ – क्लासरूम में, बाथरूम में, छत पर ..... – वहीं पीछे-पीछे गाय आ जाती है। डर के मारे मुँह से चीख निकल गई। मैं उठ बैठा।

मैंने सोचा, "काश! बेर की गुठली मेरी लेटरीन के साथ निकल गई हो! लेकिन नहीं निकली होगी .... तो?"

बहुत दिन डरता रहा। फिर इस बात को भूल गया।

लेकिन बेर-सीताफल-चीकू जैसे छोटी गुठली वाले फल आज तक नहीं खा पाया।



सुशील जोशी

पूरे 101 दिन तक उबलता रहा पानी

पारस पत्थर के बारे में तो तुमने ज़रूर सुना होगा। बहुत पहले भी लोग मानते थे और शायद आज भी मानते होंगे कि एक तत्व को दूसरे में बदला जा सकता है। इसीलिए पारस पत्थर की खोज एक बड़ा शगल रहा है। एक ऐसे पत्थर की खोज जो हर चीज़ को सोने में बदल देगा। वैसे यह समझना मुश्किल है कि ऐसे पत्थर का करेंगे क्या। क्योंकि जब हर चीज़ सोने में बदली जा सकेगी तो सोने की कीमत ही क्या रह जाएगी। फिर भी लोग कोशिश करते रहते थे।

इसी बीच आधुनिक रसायन शास्त्र की नींव रखी जा रही थी। इस काम में सबसे महत्वपूर्ण नाम फ्रांसिसी रसायनज्ञ एन्तोन लैवॉज़िए (1743-1794) का माना जाता है। उन्होंने सबसे बड़ा काम यह किया कि हर रासायनिक क्रिया में नाप तौल शुरू की।

उनके ज़माने में भी कई लोग तत्वों के परस्पर परिवर्तन की बात को मानते थे। जैसे वे कहते थे कि यदि पानी को बहुत लम्बे समय तक उबाला जाए, तो उसमें कुछ सफेद पदार्थ बन जाता है। उनके अनुसार यह इस बात का पक्का सबूत था कि पानी एक सफेद ठोस पदार्थ में तब्दील हो गया है। जब पानी उबल-उबलकर ठोस पदार्थ में तब्दील हो सकता है, तो ऐसा अन्य पदार्थों के साथ क्यों नहीं हो सकता?

1769 में लैवॉज़िए ने इस मामले की जाँच करने की ठानी। उन्होंने एक काँच का बर्तन बनाया। लैवॉज़िए इस मामले में बहुत सख्त थे और अपने उपकरण स्वयं बनवाया करते थे। काँच का यह बर्तन ऐसा था कि इसमें रखकर पानी को उबालें, तो भाप वापिस पानी बन-बनकर बर्तन में टपकती रहती थी। लैवॉज़िए ने पहले इस बर्तन को तौला और फिर तौलकर कुछ पानी इसमें भर दिया।

इस पानी को पूरे 101 दिन तक उबाला गया। सही पढ़ा, करीब तीन महीने तक इस पानी को उबाला गया। इतनी देर तक पानी को उबालने पर सफेद पदार्थ ज़रूर बना। मगर लैवॉज़िए के मन में तो कुछ और ही था। उन्होंने पानी को फिर से तौला और पाया कि उसके वज़न में कोई कमी नहीं आई है। यानी सफेद तलछट कहीं और से आई थी। अब उन्होंने बर्तन को तौला और पाया कि उसके वज़न में ठीक उतनी कमी आई है, जितनी तलछट बनी है। अर्थात तलछट बर्तन के पदार्थ में से घिस-घिसकर निकली थी।

इस प्रयोग ने दो बातें स्पष्ट कीं। एक तो, ऐसे किसी भी दावे की सबसे बढ़िया जाँच प्रयोग की मदद से की जा सकती है। और दूसरी बात यह स्पष्ट हुई कि प्रयोगों में नाप तौल का प्रावधान किए बगैर कई बार मात्र गुणात्मक अवलोकनों से बात नहीं बनती। यदि लैवॉज़िए बिना तौले प्रयोग करते और तलछट बन जाती तो वे क्या कह सकते थे कि उस तलछट का स्रोत क्या था। तब तो शायद इस मान्यता की पुष्टि ही हो जाती कि पानी ठोस सफेद तलछट में बदल जाता है।



इसे पढ़कर यह न समझ लेना कि लैवॉज़िए ने एक प्रयोग किया और सब मान गए कि एक तत्व को दूसरे में नहीं बदला जा सकता। ऐसे कई प्रयोग हुए तब जाकर यह बात स्थापित हुई। मगर (अगर-मगर तो विज्ञान में लगातार साथ चलते हैं) यह बात एकदम पूरी तरह सही भी नहीं है कि तत्वों को एक-दूसरे में नहीं बदला जा सकता। यहाँ मैं तत्वों के फेरबदल की पूरी बात तो नहीं करूँगा मगर इतना ज़रूर कहूँगा कि तत्व एक-दूसरे में बदले जा सकते हैं और प्रकृति में भी ऐसा होता रहता है। इसके सबसे अच्छे उदाहरण तो रेडियो सक्रिय तत्व हैं। जैसे युरेनियम, प्लूटोनियम वगैरह। इन तत्वों की विशेषता है कि ये टूटते रहते हैं। टूटते-टूटते इनमें से कुछ कण बाहर निकल जाते हैं और नए तत्व बन जाते हैं। ऐसे तत्वों की विस्तृत बातचीत कभी बाद में करेंगे।



पहेलियाँ

- हाथ में लीजै
  देखा कीजै



- मुँह देखो तो सूझे
  इसे तभी वो बूझे

- दो अँगुल की फितनी
  काम में आवै कितनी

- एक बड़ा पत्ता
  वह भी लत्ता

- काली है पर काग नहीं
  लम्बी है पर नाग नहीं
  बल खाती, पर डोर नहीं
  बाँधते हैं पर ढोर नहीं

- पाँव तीन सर लकड़ी का
  उसके नीचे घर मकड़ी का



मज़े की चुस्कियाँ

- एक पत्रकार ने एक बार मशहूर लेखक जॉर्ज बर्नाड शॉ से पूछा, "आप किस बुक से सबसे ज़्यादा लाभान्वित हुए?" शॉ ने उत्तर दिया, "चैक बुक से।"

- जॉर्ज बर्नाड शॉ प्रकृति प्रेमी थे। वे मानते थे कि जीवन के लिए साहित्य और सौन्दर्य बहुत ही आवश्यक हैं।

  एक दिन उनके एक मित्र ने उनसे पूछा, "आपके बारे में तो यह अफ़वाह है कि आप प्रकृति प्रेमी हैं पर आपके कमरे में तो एक फूल तक नहीं है?"

  जॉर्ज बर्नाड शॉ ने कहा, "मुझे बच्चे भी बहुत पसन्द हैं। पर बच्चों के प्रति प्रेम दिखाने के लिए क्या मैं उनकी गर्दन अपने कमरे में सजाकर रख दूँ?"

- पेरिस की आर्ट गैलरी में दर्शक-पुस्तिका रखी थी। "आगमन का कारण" में एक व्यक्ति ने लिखा, "धुआँधार बारिश।"

- "दादी, तुम्हारा चश्मा क्या चीज़ों को बढ़ाकर दिखाता है?"

  "हाँ बेटा।"

  "तो आगे से जब भी मुझे बर्फी का टुकड़ा दो, चश्मे को उतार कर दिया करो।"

पुस्तक अंश

चार्ली चैप्लिन को दुनिया का महानतम फिल्मकार माना जाता है। एक ऐसा जीनियस जिसने हमेशा आम आदमी के लिए फिल्में बनाईं। हमेशा लोगों को हँसाया। लेकिन चार्ली की आत्मकथा पढ़ने के बाद तुम जान सकते हो कि उनकी इस हँसी के पीछे कितनी तकलीफें थीं। उनका पूरा जीवन उतार-चढ़ावों से भरा रहा। जब वे बारह वर्ष के ही थे तो उनके पिता की मृत्यु हो गई थी। माँ के पागल हो जाने और कोई स्थायी आधार ना होने के कारण चार्ली को पूरा बचपन अभावों में गुज़ारना पड़ा और यतीमखानों में रहना पड़ा।

लेकिन तमाम तकलीफों के बावजूद चार्ली ने अपना हौंसला नहीं खोया। उनकी आत्मकथा सारे दुख और परेशानियों के बावजूद एक करुण कथा नहीं है। यह एक सफलता की महागाथा है। दुनिया के सबसे चहेते कलाकार की गाथा। *मेरा जीवन* शीर्षक से प्रकाशित इस आत्मकथा का हिन्दी अनुवाद सूरज प्रकाश ने किया है। इसे आधार प्रकाशन, पंचकुला, हरियाणा ने प्रकाशित किया है।

हम यहाँ चार्ली के जीवन का वो प्रसंग प्रस्तुत कर रहे हैं जब चार्ली पहली बार मंच पर आए थे। उस वक्त उनकी उम्र तकरीबन पाँच साल की रही होगी। चार्ली के भीतर छिपी हास्य प्रतिभा भी यहीं जगज़ाहिर हो जाती है। जैसा चार्ली के एक मित्र और लेखक फ्रैंक हैरीज ने चार्ली के बारे में कहा था, "लोगों को हँसाने वाले व्यक्ति लोगों को रुलाने वाले व्यक्ति से श्रेष्ठ होते हैं।"

• *मिहिर*



यह उसकी (माँ की) आवाज़ खराब होते चले जाने के कारण ही था कि मुझे पाँच बरस की उमर में पहली बार स्टेज पर उतरना पड़ा। माँ आमतौर पर मुझे किराए के कमरे में अकेला छोड़कर जाने की बजाय रात को अपने साथ थियेटर ले जाना पसन्द करती थी। वह उस वक्त "कैंटीन एट द एल्डरशॉट" में काम कर रही थी। ये एक गन्दा, चलताउ-सा थियेटर था जो ज़्यादातर फौजियों के लिए खेल दिखाता था। वे उजड्ड किस्म के लोग होते थे और उन्हें भड़काने या ओछी हरकतों पर उतर आने के लिए मामूली-सा कारण काफी होता था। एल्डरशॉट में नाटकों में काम करने वालों के लिए वहाँ एक हफ्ता गुज़ारना भी भयंकर तनाव से गुज़रना होता था।

मुझे याद है मैं उस वक्त विंग्स में खड़ा हुआ था। जब पहले तो माँ की आवाज़ फटी और फिर फुसफुसाहट में बदल गई। श्रोताओं ने ठहाके लगाना शुरू कर दिए। और अनापशनाप गाने लगे। और कुत्ते-बिल्लियों की तरह आवाज़ें निकालना शुरू कर दिया। सब कुछ अस्पष्ट-सा था। मैं ठीक से समझ नहीं पा रहा था कि यह सब क्या चल रहा है। लेकिन शोर-शराबा बढ़ता ही चला गया। और मजबूरन माँ को स्टेज छोड़ कर आना पड़ा। जब वह विंग्स में आई तो बुरी तरह से दुखी थी। और स्टेज मैनेजर से बहस कर रही थी। स्टेज मैनेजर ने मुझे माँ की सखियों के आगे अभिनय करते देखा था। वह माँ से शायद यह कह रहा था कि उसके स्थान पर वह मुझे स्टेज पर भेज दे।

और इसी हड़बड़ाहट में मुझे याद है कि उसने मुझे एक हाथ से थामा था और स्टेज पर ले गया था। उसने मेरे परिचय में दो-चार शब्द बोले और मुझे स्टेज पर अकेला छोड़कर चला गया। और वहाँ फुट-लाइटों की चकाचौंध और धुएँ के पीछे हँसते चेहरों के सामने मैंने गाना शुरू कर दिया। ऑर्केस्ट्रा मेरा साथ दे रहा था। थोड़ी देर तक तो वे भी गड़बड़ बजाते रहे। आखिर में उन्होंने मेरी धुन पकड़ ही ली। यह उन दिनों का एक मशहूर गाना "जैक जॉन्स" था:





जैक जॉन्स सबका परिचित और देखा-भाला

घूमता रहता बाज़ार में गड़बड़झाला...

अभी मैंने आधा ही गीत गाया था कि स्टेज पर सिक्कों की बरसात होने लगी। मैंने तत्काल घोषणा कर दी कि मैं पहले पैसे बटोरूँगा और उसके बाद ही गाना गाऊँगा। इस बात पर और अधिक ठहाके लगे। स्टेज मैनेजर एक रुमाल लेकर स्टेज पर आया। और सिक्के बटोरने में मेरी मदद करने लगा। मुझे लगा कि वह सिक्के अपने पास रखना चाहता है। मैंने यह बात दर्शकों तक पहुँचा दी। तो ठहाकों का जो दौरा पड़ा वह थमने का नाम ही न ले। खासतौर पर तब जब वह रुमाल लिए-लिए विंग्स में जाने लगा। और मैं चिन्तातुर उसके पीछे-पीछे लपका। जब तक उसने सिक्कों की वह पोटली मेरी माँ को नहीं थमा दी, मैं स्टेज पर वापिस गाने के लिए नहीं आया। अब मैं बिल्कुल सहज था। मैं दर्शकों से बातें करता रहा। मैं नाचा और मैंने तरह-तरह की नकल करके दिखाई। मैंने माँ के आइरिश मार्च थीम की भी नकल करके बताई।



रिले रिले

बच्चे को बहकाते रिले

रिले रिले मैं वो बच्चा

जिसे बहकाते रिले...

और कोरस को दोहराते हुए मैं अपने भोलेपन में माँ की आवाज़ के फटने की भी नकल कर बैठा। मैं यह देखकर हैरान था कि दर्शकों का इस पर ज़बर्दस्त असर पड़ा है। खूब हँसी के पटाखे छूट रहे थे। लोग खूब खुश थे। और उसके बाद फिर सिक्कों की बौछार!

और जब माँ मुझे स्टेज से लिवाने के लिए आई तो उनकी मौज़ूदगी पर उन्होंने जम कर तालियाँ बजाईं। उस रात मैं अपनी ज़िन्दगी में पहली बार स्टेज पर उतरा था। और माँ .... आखिरी बार!

जब नियति आदमी के साथ खिलवाड़ करती है तो उसके ध्यान में न तो दया होती है और न ही न्याय। माँ के साथ भी नियति ने ऐसे ही खेल खेले। उसे उसकी आवाज़ फिर कभी वापिस, नहीं मिली। जब पतझड़ के बाद सर्दियाँ आईं तो हमारी हालत बद से बदतर हो गई। हालाँकि माँ बहुत सावधान थी। और उसने थोड़े-बहुत पैसे बचाकर रखे थे। लेकिन कुछ ही दिनों में यह पूँजी भी खत्म हो गई। धीरे-धीरे उसके गहने और छोटी-मोटी चीज़ें बाहर का रास्ता देखने लगीं। ये चीज़ें घर चलाने के लिए गिरवी रखी जा रही थीं। और इस पूरे अरसे के दौरान वह उम्मीद करती रही कि उसकी आवाज़ वापिस लौट आएगी। इस बीच हम तीन कमरों के मकान से दो कमरों के मकान और फिर एक कमरे के मकान में शिफ्ट हो चुके थे। हमारा सामान कम होता चला जा रहा था। और हम हर बार जिस तरह के पड़ोस में रहने जाते उसका स्तर नीचे आता जा रहा था।



चित्रः इंटरनेट से साभार







पीली गुलमोहर



दिलीप चिंचालकर

रंगीन फूलों, घोंसलों और प्लास्टिक कचरे का मौसम

खिड़की खोलते ही कमरे में लाल-पीली झाँई फैल गई। यह सुबह की लालिमा नहीं बगीचे में खिले गुलमोहर और अमलतास से उछलकर आती रोशनी थी। जहाँ ठण्ड मौसमी फूलों की ऋतु है, वहीं अप्रैल-मई की गर्मी पेड़ों को रंगीन बनाने का मौसम है – पांगर या कोरल, गुलमोहर, नीली गुलमोहर (जेकेरेण्डा), कचनार, पीली गुलमोहर, अमलतास। जंगल की ओर निकल जाओ तो पलाश और सेमल खिले मिलेंगे। इनके रंग इतने सुर्ख हैं कि इन्हें "जंगल की आग" कहना ठीक ही लगता है। छाँव में पनपता है हरापन और रात में चाँदनी में चमकते हैं सफेद फूल। लेकिन रंगों को चाहिए कड़ी धूप। सुबह टहलने निकलो तो पेड़ों के नीचे झरी पंखुड़ियाँ चुनकर किताबों के पन्नों में दबाकर रख लेना। दोस्तों को लिखने लायक कुछ सूझ न पड़े तो कार्ड पर कुछ पंखुड़ियाँ चिपकाकर भेज देना। क्या खूब कार्ड बनेगा!

इन दिनों पक्षी सुबह-सबेरे झलक दिखाकर पत्तों-झुरमुटों में गायब हो जाते हैं। मिट्टी के तसले में पानी भरकर बगीचे में रख दो। गौरैया, बुलबुल, शकरखोरा, फुदकी, दर्ज़िन वगैरह वहाँ हाज़िरी देंगे। नहाने के शौकीन जो ठहरे ये सब। पानी ताज़ा भरा होना ज़रूरी है। कचरा गिरे बासी पानी में नहीं नहाएँगे वो। तसले के ऊपर टपकती मटकी की टप-टप हो तो और भी अच्छा। नहाने के बाद पंख फड़फड़ाना और चोंच से पंख सँवारना इनका प्रिय शगल है। पानी छिटकने के लिए गौरैया का इतनी ज़ोर से सिर हिलाना एक और पहेली सुलझाता है। तिनकों से बने इनके घोंसलों के अन्दर प्यालेनुमा गोलाइयाँ किस तरह बनती हैं? तस्वीरों के पीछे, रोशनदान में घास-फूस का ढेर जमा कर गौरैया उसमें अपना सिर रगड़ती है और उसे मनचाहा आकार देती है।

मार्च से घोंसला बनाने का जो सिलसिला शुरू हुआ है, वह

बारिश आने तक चलेगा। कुछ पक्षी एक बार अण्डे देंगे तो कुछ दो बार। पक्षी खूब जानते हैं कि खुले में बच्चों को बड़ा करने में क्या दिक्कतें आ सकती हैं। मार्च में यदि ठण्ड लौट आने की सम्भावना हो तो पक्षी घोंसला बनाने का काम अधूरा छोड़ देते हैं जब तक कि मौसम में गर्मी ना आ जाए। फिर भरपेट कीड़े-मकोड़े भी तो इसी समय मिलते हैं।

आम आ गया है और साथ-साथ पपीता, तरबूज़, संतरे भी बाज़ार में हैं। ये सारे रंगीन फल हैं। रंगीन तो हरी सब्ज़ियाँ भी हैं। इन्हें खाना तन्दुरुस्ती के लिए अच्छा है क्योंकि ये शरीर में छुट्टे घूमने वाले तत्वों (फ्री रेडिकल्स) के दुष्प्रभावों को कम कर देते हैं। कई लोग सोचते हैं कि विटामिन की गोलियाँ खा लेने से काम चल जाता है। ऐसा नहीं है। वैज्ञानिक मानते हैं कि शरीर के लिए ज़रूरी बीटा केरोटीन, विटामिन ई और ए फल-सब्ज़ियों से ही लेना चाहिए। गोलियाँ नुकसान पहुँचाती हैं।


यह लखनऊ की एक सड़क है। इसे देख तुम्हें अपने शहर की कई सड़कें याद आ गई होंगी ना? इसके लिए कौन ज़िम्मेवार है?

फोटोः दिनेश रस्तोगी

फूल-पौधों के अलावा बगीचों-सड़कों-मैदानों में रंगीनी फैलाने वाली एक और चीज़ है – प्लास्टिक का कचरा, रंगीन थैलियाँ। ये पेड़ों या आकाश से नहीं बल्कि हमारे हाथों से गिरती हैं। "ओशन कंज़र्वेंसी" नाम की एक संस्था के 3,78,000 स्वयंसेवकों ने 76 देशों के समुद्र किनारों से कचरा बीना। हिसाब लगाया तो पता चला कि वहाँ एक दिन में 30 लाख किलो कचरा इकट्ठा होता है। इस कचरे में कोई 72 लाख किस्म की वस्तुएँ मिली हैं। अनजाने में हमारे द्वारा फेंकी गई चीज़ें – रिबन, डोरियाँ, जालियाँ – पानी में रहने वाले प्राणियों की जान ले सकती हैं।

ऑस्ट्रेलिया के सिडनी शहर की नगरपालिका ने लोगों के घर के बाहर रखे कूड़ेदान पर इलेक्ट्रॉनिक टैग लगाने का प्रयोग किया है। इससे उनके द्वारा पैदा किए जाने वाले कूड़े के प्रकार और मात्रा का हिसाब रखा जा सकेगा। हो सकता है इस आधार पर उन लोगों पर टैक्स भी लगाया जाए। तब तो भारत में सबसे ज़्यादा टैक्स या जुर्माना खाली प्लॉट का वह मालिक चुकाएगा जिसने उस पर मकान नहीं बनाया है। सारे पड़ोसी कचरा जो वहीं फेंकते हैं।



ग्राहक ने दुकानदार से कहा, "मुझे एक चूहेदानी चाहिए।"

"अभी लाया साहब," कहकर उसने चूहेदानी की तलाश में निगाह दौड़ाई।

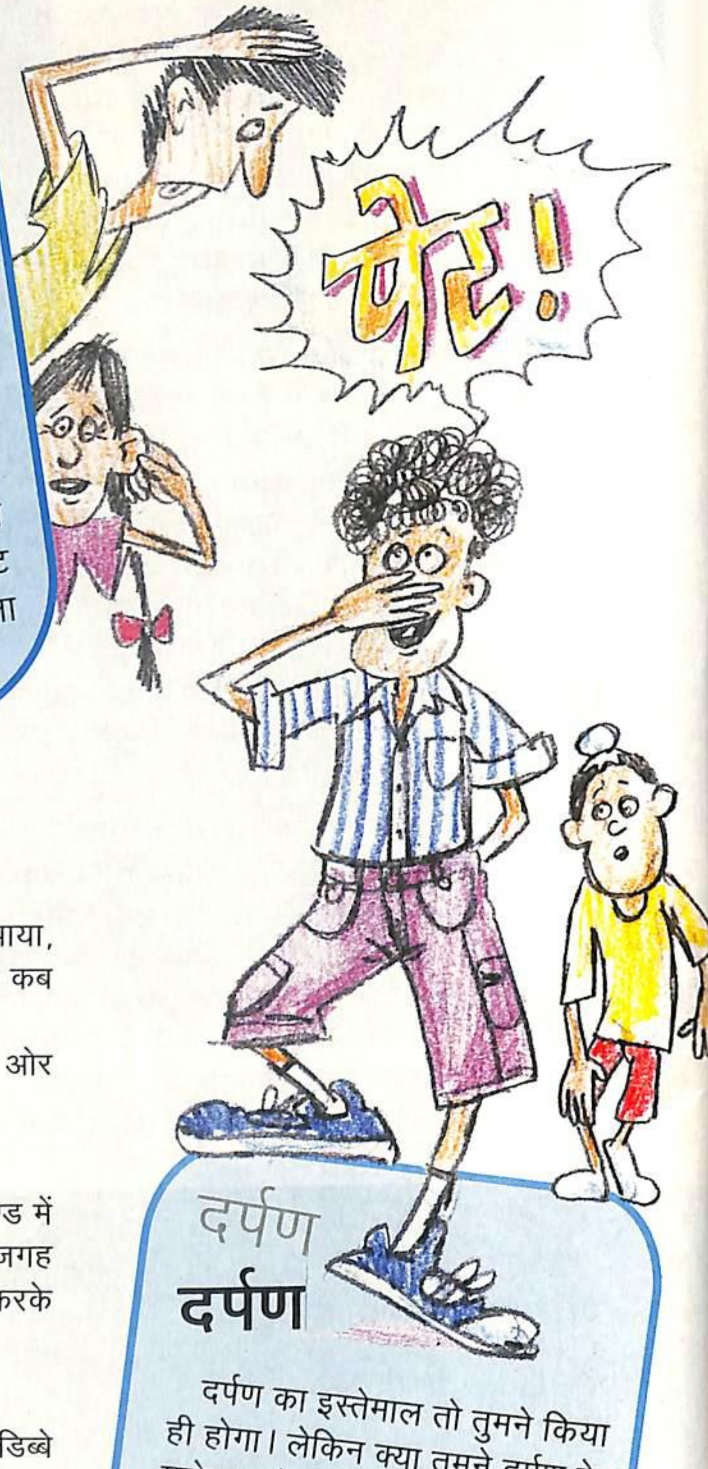
उतावली से ग्राहक ने बाहर झाँका। बस स्टैण्ड पर बस रुक रही थी। उसने जल्दी मचाई, "जल्दी करो। मुझे बस पकड़नी है।"

दुकानदार बोला, "माफ करना, इतनी बड़ी चूहेदानी तो हमारे पास नहीं है।"

घोटल-मोटल के खेल

तुम्हारे लिए इस बार एक नया खेल लेकर आए हैं। इस खेल में एक खिलाड़ी टीम का लीडर होगा। वह शरीर के किसी एक अंग का नाम लेगा और उस पर अपनी उँगली भी रखेगा। जिस अंग का वह नाम लेगा तुम्हें अपने उसी अंग पर उँगली रखना है। जैसे यदि वह आँख कहे तो तुम्हारी उँगली आँख पर होनी चाहिए। यानी तुम्हें इस बात का ध्यान रखना है कि वह क्या कह रहा है। लीडर कई बार कहेगा कुछ और, करेगा कुछ और। मसलन वह कह तो रहा होगा, "पेट!" पर उसकी उँगली होगी अपनी नाक पर। अगर तुम उसके जाल में फँस गए तो आउट। इस खेल में एक बार में कई लोग आउट हो सकते हैं। जो खिलाड़ी आखिर तक आउट नहीं होगा वह अगली बार लीडर बनेगा। यह खेल उतना आसान नहीं जितना लगता है। ज़रा खेल के देखो।

प्रस्तुति - मुकेश मालवीय



चुटकुले

- लीला शहर से बाहर जाने वाली थी। उसने अपने भाई को समझाया, "देखो मोनू, कल से जो भी चिट्ठी आए उस पर लिख देना कि वह कब आई।"
  जब वह लौटकर आई और डाक देखने लगी तो हर पत्र पर एक ओर लिखा था, "आज आई है।"

- मनुष्य भी अजब घोंचू होते हैं। यदि तुम किसी से कहोगे कि ब्रह्माण्ड में 3704553703 तारे हैं तो वह फौरन मान लेगा। लेकिन किसी जगह "ताजा रंग किया है" का नोटिस देखेगा तो वहाँ उँगली खराब करके ज़रूर देखेगा।

- दो दोस्त रेलगाड़ी में यात्रा कर रहे थे। भीड़ बहुत थी और वे जिस डिब्बे में बैठे थे, वह आखिरी डिब्बा था।
  पहला, दूसरे से, "यार, यहाँ तो बहुत भीड़ है।"
  दूसरा , "ज़रा गाड़ी चलने दो, फिर देखना।"
  जब गाड़ी चलने में दो मिनट रह गए तो उसने साँप-साँप कहकर शोर मचा दिया, जिससे बाकी यात्री डरकर भाग गए, तो उसने अपने दोस्त से कहा, "अब बेशक आराम से सो जाओ।" लेकिन जब वे सोकर उठे तो वहीं के वहीं थे। उन्होंने एक कुली को बुलाकर माजरा पूछा तो उसने बताया, किसी ने अफवाह उड़ा दी थी कि इस डिब्बे में साँप है तो स्टेशन मास्टर ने उस डिब्बे को कटवा दिया और गाड़ी चली गई।

दर्पण

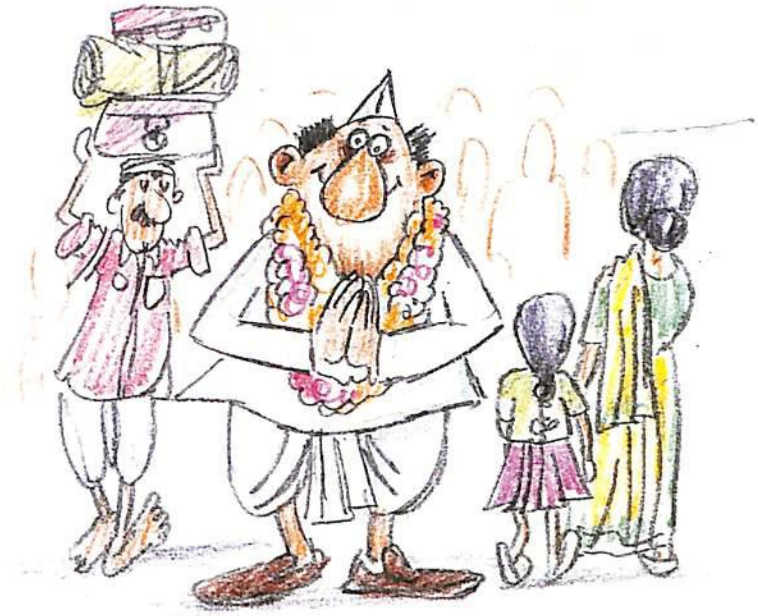
दर्पण

दर्पण का इस्तेमाल तो तुमने किया ही होगा। लेकिन क्या तुमने दर्पण के मज़ेदार खेल भी खेले हैं? एक खेल यह भी है:

दर्पण की पट्टी को कागज़ पर खड़ा करो। अब दर्पण में देखते हुए अपना नाम या जो भी तुम लिखना चाहो कागज़ पर लिखो। ध्यान रहे कि लिखते समय दर्पण में देखना है, कागज़ पर नहीं।

शिवनारायण गौर

फूलों की माला



वे एक छोटे शहर में रहते हैं। यह शहर एक नदी का शहर है। इस नदी और कई अन्य कारणों से यह शहर एक धार्मिक स्थल के रूप में मशहूर है। यहाँ रोज़ाना काफी लोगों का आना-जाना होता है। आमतौर पर सुबह-शाम आने वाली पैसेन्जर ट्रेन से बड़ी संख्या में लोग आते-जाते हैं।

वे सज्जन इसी शहर में ही तो रहते हैं। वही जिनके बारे में यहाँ बात करने वाले हैं। वे साठ से ऊपर के ही होंगे। सारी उमर वे राजनीति से जुड़े रहे। इस उमर में उन्हें इस बात का बड़ा अफसोस रहता है कि उनकी इतने साल की मेहनत से उन्हें कुछ नहीं मिला। कुछ ऐसा जिस पर वे गर्व कर सकते। कितना गुस्सा आता होगा उन्हें, हमें क्या पता? इस गुस्से ने उनके दिमाग पर भी असर डाला है। उनके मन में यह असफलता गहरे से बैठ गई है। अब वे जाने-अनजाने भीड़ और सम्मान की चाह में इधर-उधर घूमते रहते हैं।

आजकल वे बड़े सबेरे उठकर नहा-धोकर साफ-सुथरे कपड़े पहनकर घर से निकल पड़ते हैं। अमूमन खादी का सफेद कुर्ता और सफेद धोती उनका पहनावा होता है। सबसे पहले वे फूल-मालाओं की दुकान पर जाते हैं। ताज़े फूलों की कुछ मालाएँ खरीदते हैं। फिर सीधे शहर के रेलवे स्टेशन पहुँचते हैं। और सुबह आने वाली पैसेंजर गाड़ी का इन्तज़ार करते हैं। उन्हें पता है कि आम जनता पैसेन्जर गाड़ी में ही यात्रा करती है।

वे पैसेन्जर से उतरने वाली भीड़ के आगे-आगे चलने लगते हैं – अपने गले में मालाएँ डाल, हाथ हिला-हिलाकर सबका अभिवादन करते हुए। इस भीड़ में न वे किसी को जानते हैं और न कोई उन्हें पहचानता है। जो इक्का-दुक्का लोग उन्हें जानते हैं वे उनके इस हाल पर दुखी होते हैं। शायद उन्हें इस हाल में पहुँचाने वालों को गालियाँ भी देते हों। कभी-कभी तो लोग उन्हें उनके घर भी छोड़ आते हैं।

वे किसी को कोई नुकसान नहीं पहुँचाते। बस अपने जीवन को उत्साह और आनन्द के साथ जीते हैं। उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता कि कुछ उन्हें पागल कहते हैं।



रुमाल से कमाल

ज़मीन से रुमाल उठाना यूँ तो बहुत ही आसान है लेकिन क्या तुम इस तरीके से रुमाल उठा सकते हो?

ऐड़ियों के बल बैठ जाओ। अब नीचे दिए चित्र के अनुसार एक छड़ी को अपने घुटनों के नीचे दबा लो और कोहनियों को मोड़ लो। रुमाल की ओर आगे झुको। सन्तुलन बनाने के लिए अपने हाथों का उपयोग करो और दाँतों से रुमाल उठाने की कोशिश करो।

कर पाए?





तेजी ग्रोवर

मन में खुशी पैदा करने वाले रंग

चित्र: तेजी ग्रोवर

जब से मैं चित्र बनाने लगी हूँ, सबसे ज़्यादा खुशी तब महसूस हुई जब मैंने हल्दी, अनार के छिलकों और सूखे फूलों से रंग बनाना शुरू किया। होशंगाबाद में नर्मदा नदी के किनारे रहते हुए मुझे समझ में आया कि मैं जो कुछ भी करती हूँ, उसका असर नदी पर होता है। नदी को जितना दुख मैं दूँगी, मुझे उतना ही दुख होगा। बाज़ार में बिकने वाले रंग किस-किस चीज़ के बने हैं, कहाँ से आते हैं, इसकी ठीक-ठीक जानकारी मेरे पास नहीं है। अक्सर ऐसी जानकारी हमसे छिपी रहती है। हमें यह भी बताया जाता है कि बाज़ारी रंग "चिरकाल" तक खराब नहीं होते। पता नहीं इन कम्पनियों को "चिरकाल" का पता कैसे मिला?

जिनमियम, ऑस्ट्रेलिया में रंगीन बिन्दुओं से बना एक "पेट्रोग्लिफ" (चट्टानों को कुरेदकर बनाए चित्र) रंगों के उपयोग का सबसे प्राचीन विवरण है। इसी तरह भीम-बैठका (मध्यप्रदेश) के शैल-चित्र कई हज़ार वर्ष पुराने हैं। बाज़ारी रंग बनाने के दौरान तैयार रंग के साथ-साथ बहुत मात्रा में ज़हरीले पदार्थ भी पैदा हो जाते हैं। इनसे हवा, पानी, मिट्टी और कलाकार सभी को नुकसान पहुँचता है। कुदरती रंगों से चित्र बनाकर मन तो खुश होता ही है, अपने पुरखों की ही तरह हम पृथ्वी की जीवित सुन्दर वस्तुओं की रक्षा भी करते हैं। ये लोग भी तमाम खतरों के बावजूद कभी-कभी तीस-चालीस मील तक रंगों की खोज में भटकते थे। क्या ज़रा-सी मेहनत से हम अपने लिए रंग तैयार नहीं कर सकते?

रंग पिग्मेंट से आता है। और कुछ दुकानों पर प्राकृतिक तत्वों से बने पिग्मेंट पाउडर की शक्ल में मिल जाते हैं। उनसे रंग तैयार किए जा सकते हैं। लेकिन हल्दी और अनार

के छिलकों के लिए तो यहाँ-वहाँ भटकना भी नहीं पड़ेगा। यहाँ दिया चित्र मैंने कुदरती रंगों से बनाया है। कुदरती रंग बनाना मैंने अपने मित्र चित्रकार सिद्धार्थ से सीखा। सिद्धार्थ ने कुदरती रंगों पर जीवन भर काम किया है।

अगले अंकों में हम और कई रंगों की चर्चा करेंगे, जैसे फूलों, पत्तों आदि से रंग बनाना। **फिलहाल ये दो विधियाँ:**

1. अनार के छिलकों को लोहे के बर्तन में कम आँच पर 15-20 मिनट तक उबालकर छान लो। रंग तैयार है।
2. छिलकों को छाने बिना चम्मच से निकालकर इसमें बबूल की गोंद मिला दो। दानेदार रंग बन जाएगा।
3. उबालने के बाद छिलकों को रात भर बर्तन में ही पड़ा रहने दो तो रंग लगभग काला हो जाएगा।





भीम-बैठका के दो शैल चित्र (साभार - *द रॉक आर्ट हैरीटेज और रॉक आर्ट इन द ओल्ड वर्ल्ड*)

1. दो-तीन चम्मच हल्दी पाउडर को चार-पाँच चुटकी फिटकरी के साथ 5-6 मिनट तक उबालने पर नींबुई पीला रंग मिलेगा। इसे छानकर या बिना छाने गोंद मिलाकर इस्तेमाल किया जा सकता है।
2. फिटकरी की जगह खाने का सोडा डालने पर रंग गहरा और गाढ़ा हो जाता हैं – ऑकर और सिएना के बीच का।

अगले अंक में सूखे फूलों से रंग बनाना सीखेंगे...। ताज़े फूल तो तितलियों, फुलचुकियों और मधुमक्खियों के लिए कहीं ज़्यादा ज़रूरी हैं।

देखिए, ऊँट किस करवट बैठता है

किसी कुम्हार और कुँजड़े ने एक ऊँट किराए पर लिया। एक ओर कुम्हार ने अपने मिट्टी के बर्तन लादे और दूसरी ओर कुँजड़े ने अपनी शाक-भाजी। रास्ते में ऊँट ने कुँजड़े की शाक-भाजी पर मुँह मारना शुरू कर दिया। यह देखकर कुम्हार खुश हुआ कि उसका कुछ नुकसान नहीं हो सकता। इस पर कुँजड़े ने कहा, "घबराओ नहीं! देखें कि ऊँट किस करवट बैठता है।" जब ठिकाने पर पहुँचे तो ऊँट उसी करवट बैठ गया, जिधर कुम्हार के बर्तन रखे थे।



साभार: इंडिया

प्रमोद

धम्म

आगड़ बागड़ बम्म
कुएँ से पानी
खींच रहे थे हम
छूटी जो हाथ से रस्सी
तो हुई – घरररर्रर्र...घम्म।

मनामनी में तनातनी

नानीजी की नाक बड़ी थी
नानाजी का कान बड़ा
नानीजी रबड़ी खाती थी
नाना खाते दही बड़ा

नानी जी की आँख बड़ी थी
नाना जी का दाँत बड़ा
नानी नैनीताल चली तो
नाना चल दिए अलमोड़ा

नाना नानी करते रहते
एक दूजे की मनामनी
मनामनी में होती रहती
उनमें अकसर तनातनी

पानी उतरा टीन पर

पानी उतरा टीन पर
फिर कूदा ज़मीन पर
पत्ती और फूल पर
खूब झूल-झूल कर

कोहरे में हवाओं में
नाचकर झूम कर
छुप गया खो गया
मिट्टी को चूम कर

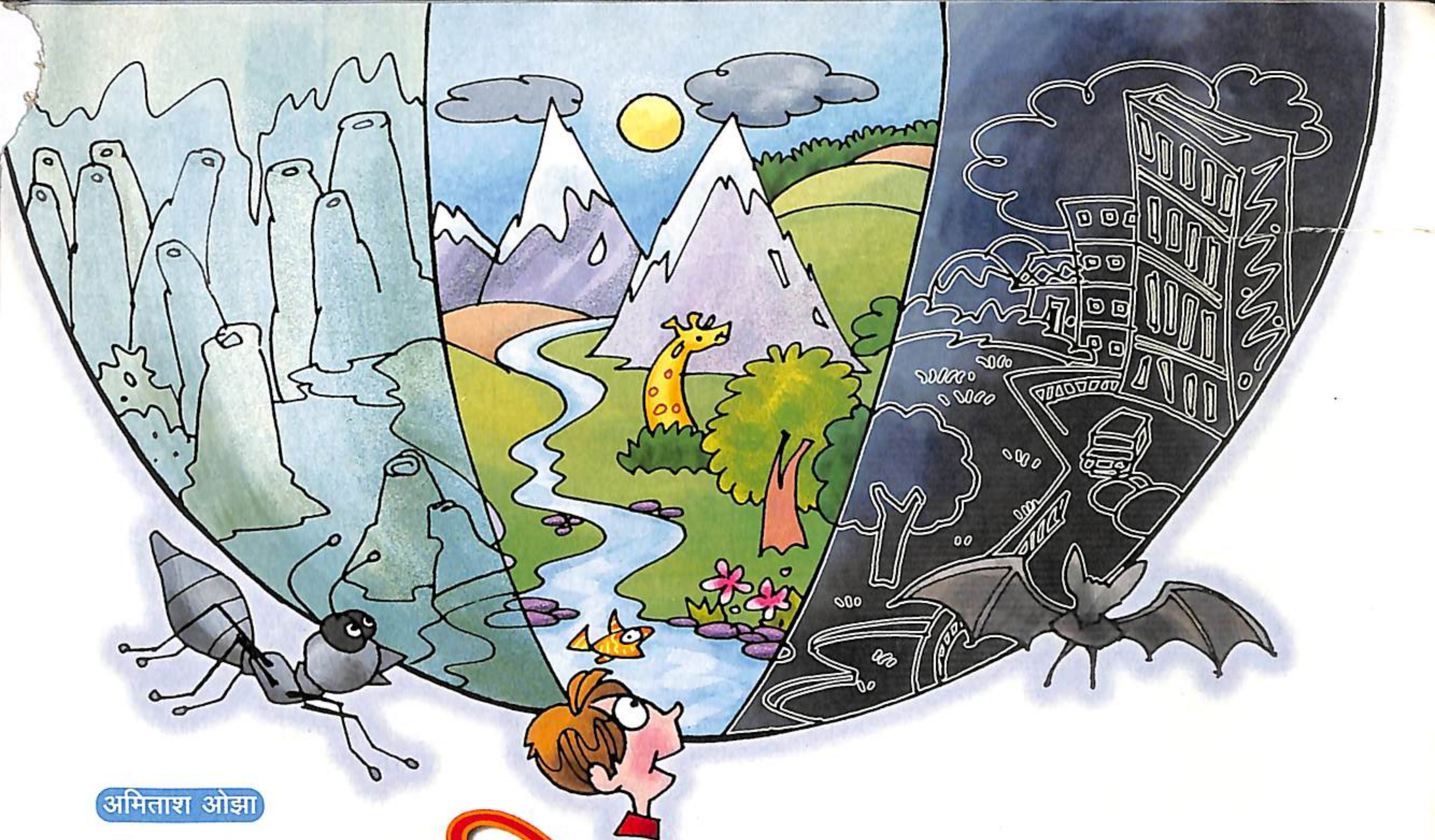


ज़हीर कुरैशी

चूहे का चश्मा

चूहे ने चश्मा पहना तो
कुछ का कुछ सूझा
चश्मे की आँखों ने
बिल्ली को मच्छर बूझा

बिल्ली बोली – पिद्दी चूहे
चश्मा ज़रा उतार
मरने से पहले कर ले
बिल्ली से आँखें चार



अमिताश ओझा

क्या यह दुनिया वैसी ही है जैसी हमें दिखती है?

मेरे पिछले लेख (फरवरी अंक में) में मैंने सवाल पूछने के बारे में चर्चा की थी। इस बार शुरुआत एक सवाल से ही करते हैं – यह दुनिया क्या है और कैसी है? तुम कहोगे यह भी कोई सवाल हुआ! अरे दुनिया जैसी है वैसी है। पर यह अहम सवाल सालों तक लोगों के बीच घूमता रहा। अलग-अलग समय में अलग-अलग लोगों ने कई तरह से इसके जवाब दिए। देखें...

दुनिया है क्या?

क्या यह दुनिया वैसी ही है जैसी हमें दिखती है या कुछ और है? क्या यह हमेशा से ऐसी ही थी? क्या यह कभी बदलेगी? ऐसे कई सवाल हैं जिन्हें हज़ारों साल से लोग पूछ रहे हैं। पर आज तक इनका कोई ऐसा जवाब नहीं मिला जिसे सभी सही मानते हों। थेल्स ने सबसे पहले जवाब देने की कोशिश की और कहा कि दुनिया का मुख्य तत्व पानी है, पाइथागोरस के अनुसार सत्य सिर्फ संख्याएँ हैं। भारत में आमतौर पर माना जाता था कि दुनिया के पीछे का सत्य ब्रह्म है।

सोचो हमारे लिए इस दुनिया में पेड़ हैं, पौधे हैं, पर्वत, झरने हैं, नदियाँ हैं। पर क्या वे सचमुच हैं या फिर वे इसलिए हैं क्योंकि हम उन्हें वैसा देखते हैं। क्या सभी प्राणियों के लिए यह दुनिया वैसी ही है जैसी हमें दिखती है। बकरियों के लिए, चींटियों के लिए या फिर अन्य एक-कोशकीय जीवों के लिए। या फिर उन जीवों के लिए जो हम मनुष्यों से बिल्कुल अलग हैं जैसे चमगादड़। कहते हैं चमगादड़ रंग नहीं देख सकते। खाना और अँधेरे में रास्ता ढूँढने के लिए वे ध्वनि तरंगों का इस्तेमाल करते हैं।

क्या हम सबकी दुनिया एक-सी है?

हमने पढ़ा है कि हम जो देखते हैं उसका हमारे मस्तिष्क में एक द्विआयामी चित्र बनता है। फिर सवाल यह है कि हम उसे त्रिआयामी कैसे देखते हैं? हमारा मस्तिष्क उन्हें त्रिआयामी बनाता है। मतलब यह है कि हमारे मस्तिष्क में यह क्षमता है कि वह एक चित्र को त्रिआयामी बना दे। इसका

मतलब यह है कि दो चीज़ों के बीच की दूरी जो हम देखते हैं वह हमारे मस्तिष्क ने बनाई है। कुत्तों और बिल्लियों के मस्तिष्क में ऐसी काबिलियत नहीं है कि वे द्विआयामी चित्रों को त्रिआयामी बना सकें। तो इसका मतलब यह हुआ कि उन्हें यह दुनिया एक चित्र की तरह नज़र आती होगी। जैसे कि किसी चित्र में चीज़ों के बीच की दूरी समझ में नहीं आती है। यदि ऐसा है तो उनकी दुनिया में दूरियाँ नहीं होंगी। इसका मतलब उनकी दुनिया और हमारी दुनिया अलग-अलग है। यह तो एक उदाहरण है। तो सोचो क्या यह सम्भव है कि हम सब के लिए दुनिया अलग-अलग है? अगर हाँ, तो सवाल यह है कि फिर असली दुनिया क्या है?



उसकी या इसकी, दुनिया असली किसकी?

आजकल हो रहे शोधों से पता चलता है कि हमारी दुनिया हमें वैसी ही दिखती है जैसा हम उसे बनाते हैं। और इसे बनाने का काम हमारी इन्द्रियाँ और हमारा मस्तिष्क मिलकर करते हैं।

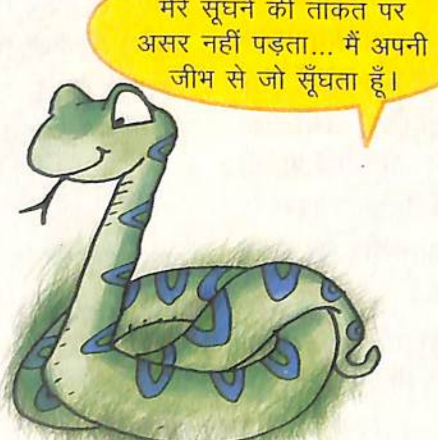
एक छोटा-सा उदाहरण लेते हैं। एक लाल रंग का सेब है। तुम कहोगे कि एक चीज़ है जो लाल है और मैं उसे सेब कहूँगा जिसमें सुगन्ध है और जो स्वादिष्ट है। वो सेब ही है इसके लिए हमें और क्या प्रमाण चाहिए? पर सोचो अगर सेब को किसी ऐसे कमरे में रख दिया जाए जिसमें हरे रंग का प्रकाश है तो? तो सेब का रंग बदल जाएगा और



वो हमें काला दिखाई देगा। पर सेब को तो लाल होना चाहिए! इसका मतलब यह है कि हम सेब को जिस भी रंग का देखना चाहें वह दिखेगा बस उसके आसपास थोड़ा बदलाव करना होगा। तो क्या सेब का अपना कोई रंग नहीं है? रंग है तो कहाँ? हमारे दिमाग में? वैज्ञानिक कहते हैं कि दिमाग का वी-4 भाग हमें चीज़ों के रंग दिखाता है। दिमाग के और दूसरे भाग अपना-अपना काम करते हैं जिनके बारे में हम बाद में कभी बात करेंगे।

कोई बताए कि सेब है भी कि नहीं?

चलो मान लिया कि रंग हमारे दिमाग में हैं पर सेब तो दुनिया में है। सेब की सुगन्ध और उसका स्वाद तो हैं। बर्कले नाम के एक दार्शनिक ने ऐलान किया कि दुनिया में कोई भी चीज़ नहीं है।



हम अपने दिमाग में जो कुछ बनाते हैं वही देखते हैं। उनका कहना था कि जिन चीज़ों को हम महसूस नहीं करते वे हैं ही नहीं। जिन चीज़ों को हम अनुभव करते हैं वे हमारी इन्द्रियों पर निर्भर हैं। इन्द्रियों द्वारा भेजे गए सन्देश से हमारा दिमाग उन्हें बनाता है। यानी सेब का रंग ही नहीं उसकी सुगन्ध और उसका स्वाद भी हमारी इन्द्रियों पर निर्भर है। तुमने देखा होगा कि जुकाम होने पर कोई भी गन्ध नहीं आती। अगर किसी को बचपन से ही जुकाम हो तो उसके लिए दुनिया में गन्ध नाम की कोई चीज़ होगी ही नहीं। यही स्वाद के साथ भी होता है।

आइडियलिज़्म व रियलिज़्म

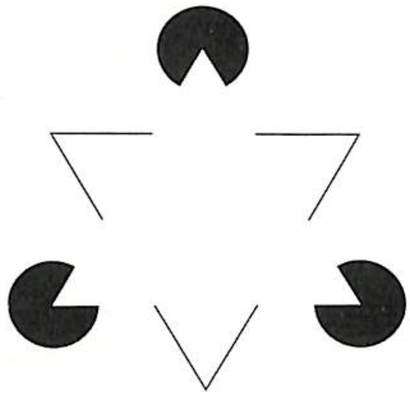
क्या अनाप-शनाप बोले जा रहा हूँ? यही सोच रहे हो ना तुम। ऐसा थोड़े ही हो सकता है कि दुनिया में कुछ है ही नहीं। यदि ऐसा होता तो जो हम देखना चाहते उसे सोच लेते! मेरे पास कार नहीं है, हम सोचते और कार आ जाती। है ना? सोचो, सोचने में कोई बुराई नहीं है।

बर्कले के इस विचार को आइडियलिज़्म (idealism) कहते हैं और जो इस विचार को नहीं मानते हैं और कहते हैं कि चीज़ें वास्तव में हैं उन्हें रियलिस्ट कहते हैं और इस विचार को रियलिज़्म (realism)।

फिनोमेना व नौमेना

एक और दार्शनिक काण्ट ने भी इस सवाल के जवाब के लिए एक सुझाव दिया। उसने कहा कि दुनिया में चीज़ें हैं पर वे क्या हैं, कैसी हैं यह हमें नहीं पता। हो सकता है कि हम जो देखते हैं चीज़ें वैसी ही हों पर यह भी हो सकता है कि एकदम अलग हों। इसका हमें कभी पता नहीं चल सकता। हम चीज़ों को जिस रूप में देखते हैं उसे उन्होंने फिनोमेना (phenomena) कहा और चीज़ें वास्तव में जैसी हैं उसे उन्होंने नौमेना





जैसे यह सफेद त्रिभुज वास्तव में है नहीं पर हमने इसे बनाया है तो क्या यह सम्भव नहीं कि जो दुनिया हम देखते हैं वो भी हमारी ही बनाई हुई हो।

(noumena) कहा। उनका मानना था कि हम जो अनुभव करते हैं वो हमारी कल्पना है। पर हम इंसानों में कल्पनाशक्ति समान है इसलिए अधिकतर चीज़ों का अनुभव एक जैसा ही होता है। नतीजा यह कि हम मान लेते हैं कि कोई वस्तु है और वो वैसी ही है जैसी हम सब को दिखती है पर वास्तव में ऐसा है नहीं।

चुआंग जू का सपना

चुआंग जू ने सपना देखा कि वह तितली है और जब वह सोकर उठा उसे यह नहीं पता था कि वह एक मनुष्य है जिसने सपना देखा कि वह एक तितली है या वह एक तितली है जिसने एक सपना देखा कि वह एक मनुष्य है।

होर्खे लुइस बोर्खेस

प्लेटो का आइडिया

दुनिया के अस्तित्व पर और भी कई लोगों ने कई बार सवाल उठाए हैं। प्लेटो ने 2500 साल पहले कहा कि हम जिन चीज़ों को देखते हैं वे सिर्फ बुरी नकल हैं। वास्तव में सच्चाई कुछ और है। इस सत्य को उन्होंने आइडिया (Idea) कहा जो किसी और दुनिया में है और इस दुनिया की सारी वस्तुएँ उनकी नकल मात्र हैं। मतलब यह कि यहाँ जो कुर्सी हम देखते हैं वह आइडिया के दुनिया की कुर्सी की बुरी नकल है।

हमारे सवाल

ऐसा नहीं है कि ये सवाल सिर्फ विदेशों में ही लोगों ने उठाए हैं। हमारे देश में भी लोगों ने यह सवाल पूछा है और जवाब देने की कोशिश की है। भगवान बुद्ध ने दुनिया के बारे में सवाल उठाए। बौद्ध दर्शन के अनुसार यह दुनिया मात्र कल्पना है और सत्य सिर्फ परिवर्तन है।

शंकराचार्य के अनुसार दुनिया भ्रम है। हम जिस विविधता का अनुभव करते हैं वह हमारी अज्ञानता के कारण है। सत्य सिर्फ एक



है जिसे उन्होंने ब्रह्म कहा और कहा कि वास्तव में सब कुछ ब्रह्म है और कोई विविधता नहीं है। जिसे काण्ट ने हमारी क्षमता बताया शंकराचार्य ने उसे हमारी अज्ञानता कहा।

वास्तव में इस सवाल का कोई अन्त नहीं दिखता और शायद लोग कहें कि ऐसे फालतू सवालों से क्या फायदा? पर इन्हीं सवालों ने बताया कि दुनिया में परमाणु हैं, दूरी क्या है, समय क्या है और न जाने कितने ही प्रश्न इस छोटे से सवाल से निकले हैं। दार्शनिकों का काम है सवाल पूछना और वैज्ञानिकों का काम है उन सवालों का जवाब खोजना।

सभी चित्र: जोएल गिल

FINISHED FILES ARE THE RE- SULT OF YEARS OF SCIENTIFIC STUDY COMBINED WITH THE EXPERIENCE OF YEARS

इन दो पंक्तियों में कितने F हैं? ज़रा फिर से गिनकर देखो।

इस पन्ने में न से शुरू होने वाली कितनी चीज़ें हैं?



मैंने ढूँढीं ....

"न" से शुरू होने वाली कौन-कौन-सी चीज़ें हमसे छूट गईं? उनके चित्र बनाओ।

मेरा पन्ना

बहुत पहले की बात है। एक कुटिया में अपनी बच्ची के साथ एक बुढ़िया रहती थी। बुढ़िया एक रोज़ बाज़ार गई और चमाचम भूरी देगची खरीद लाई। थोड़े दिनों बाद बुढ़िया भगवान को प्यारी हो गई। उस समय उस बच्ची की उम्र बारह साल थी। सारा काम-काज़ उसे ही करना होता। दोपहर के खाने से पहले वह बच्ची उस देगची में गर्मा-गर्म कॉफी बनाती और शौक से पीती।

एक रात जब वह लड़की सोने जा रही थी तो उसे कुछ रोने-कराहने की सी आवाज़ सुनाई दी वह ठिठकी। उसने ध्यान से इधर-उधर गौर किया। और तभी उसकी नज़र उस देगची पर पड़ी। उसने देखा कि उस देगची के एक नाक है, मुँह है और दो आँखें हैं जिनसे आँसू टपक रहे थे। यह सब देख लड़की इतना डर गई कि घर छोड़कर निकल भागी। उसके पड़ोस में एक लड़की थी जिसका नाम रीटा था। कुटिया को खाली देख रीटा उसमें रहने लगी। अगले रोज़ उसे देगची ठीक-ठाक हालत में लगी। रीटा ने भी उसमें कॉफी बनाई। गर्म कॉफी को गिलास में डाला और सुड़कने लगी। तभी रीटा ने भी देखा कि देगची सिसक रही है। मगर वह डरी नहीं। वह देगची के पास गई और उससे बातें करने लगी। उसने पूछा कि तुम रोती क्यों हो?



"कोई मेरी साफ-सफाई नहीं करता है। पहले तो उस लड़की की नानी थी मगर उनके मरने के बाद लड़की ने मेरा कोई ध्यान नहीं रखा... मैंने उसे बताना चाहा तो वह मुझे छोड़कर और चली गई।"

सिसकते हुए ही देगची ने जवाब दिया। थोड़ा रुककर वह फिर बोली, "और तो और तुमने भी वही किया... मुझमें कॉफी बनाई और पहली वाली लड़की की तरह मुझे साफ करना भूल गई। अपनी बात कहने के लिए हर बच्चा रोता है कि नहीं...।"

"ठीक है, ठीक है। मैं समझ गई। अब से मैं हफ्ते में तीन बार तुम्हें माँज़ दिया करूँगी।" रीटा ने चुप कराते हुए देगची को समझाया। और रीटा ने अपनी बात भी रखी। मगर एक दिन फिर देगची के सिसकने की आवाज़ आने लगी।

"अब क्या हुआ?" रीटा ने देगची के पास जाकर पूछा।

"कोई मेरे साथ खेलता भी नहीं है। मैं बोर हो जाती हूँ।" देगची बोली। "अरे इसमें क्या बड़ी बात है। मैं तुम्हारे साथ खेला करूँगी।" रीटा ने ढाँढस बँधाया।

"नहीं," देगची तपाक से बोली, "मैं तो किसी देगची के साथ ही खेल सकती हूँ। तुम्हारे साथ खेलने में मुझे क्या मज़ा आएगा?" देगची की बात में दम था। रीटा को बात जँची और वह दूसरी देगची भी ले आई। सुनहरे रंग की।

वे दोनों देगचियाँ रोज़ खेलतीं। रीटा उनमें बारी-बारी से कॉफी बनाती।

लेकिन अब रीटा की परेशानी बढ़ गई क्योंकि उसे अब दोनों देगचियों की साफ-सफाई करनी होती थी। साढ़े तेरह साल की लड़की को तो यह ज़्यादा ही लगेगा क्योंकि हर रोज़ पूरे घर की साफ-सफाई और खाना पकाने का काम रीटा को अकेले करना पड़ता। दूसरा कोई था ही नहीं।

थकी-हारी वह एक दिन यह सोच ही रही थी कि किस देगची की छुट्टी कर दी जाए कि देगचियों के लड़ने की आवाज़ आने लगी। वह उनके पास पहुँची। उन दोनों ने रीटा को बताया कि उसके सो जाने के बाद वे दोनों खूब मस्ती करती हैं। मगर दिक्कत यह है कि वे घूम-फिर नहीं सकती हैं। रीटा ने कहा, "ठीक है, वह उन्हें पहिए लाकर दे देगी। मगर उसके बाद कोई रोना-धोना नहीं होना चाहिए।" रीटा ने कह तो दिया मगर उसे ख्याल आया कि वह उनके लिए पहिए कैसे लाएगी? उसके पास ले-देकर पाँच सौ बीस रुपए बचे थे। उधर देगचियाँ अपनी ज़िद पर अड़ी थीं।

सुबह जब रीता सोकर उठी तो उसने भूरी और सुनहरी देगची को बेचने का फैसला कर लिया जिससे घर में कोई चीख-पुकार न मचे। उन दोनों की जगह वह ऐसी देगची ले आई जो





बोलती-सिसकती नहीं थी। जिस आदमी को उसने वे देगचियाँ बेचीं, वह भी उनके रोने-धोने से परेशान हो गया और उन्हें झाड़ी में फेंक आया।

रीटा अब अठारह साल की है। कुछ कमा भी लेती है। आज भी वह गर्म कॉफी पीने का शौक रखती है। भूरी और सुनहरी देगचियाँ उसके पास नहीं हैं मगर पता नहीं कहाँ से उसे उनके रोने-सिसकने की आवाज़ सुनाई देती रहती है।

चित्र व कहानीः मौलिका शर्मा, चौथी, मुम्बई, महाराष्ट्र

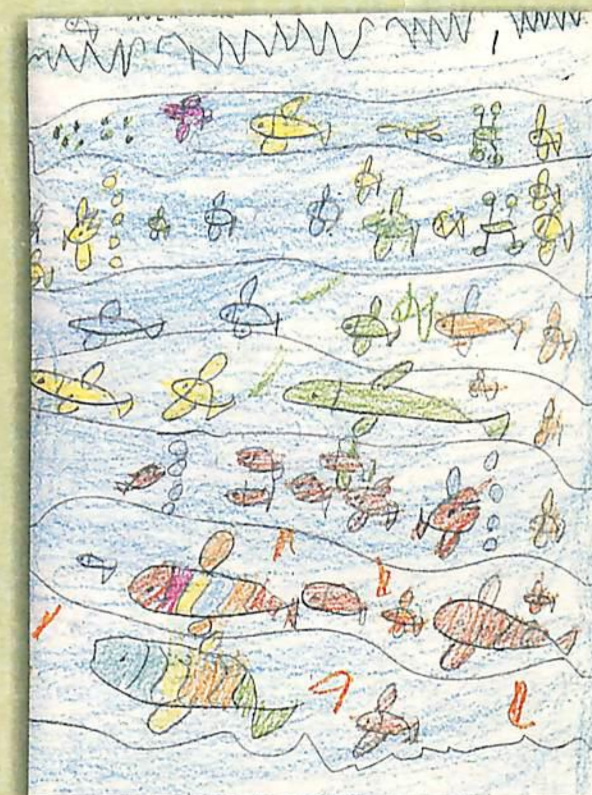
मेरा पन्ना



विजय तेहलानी, भोपाल, म. प्र.



रितिका गौर, पहली, भोपाल, म.प्र.



विवेक गौर, पाँच वर्ष, भोपाल, म. प्र.

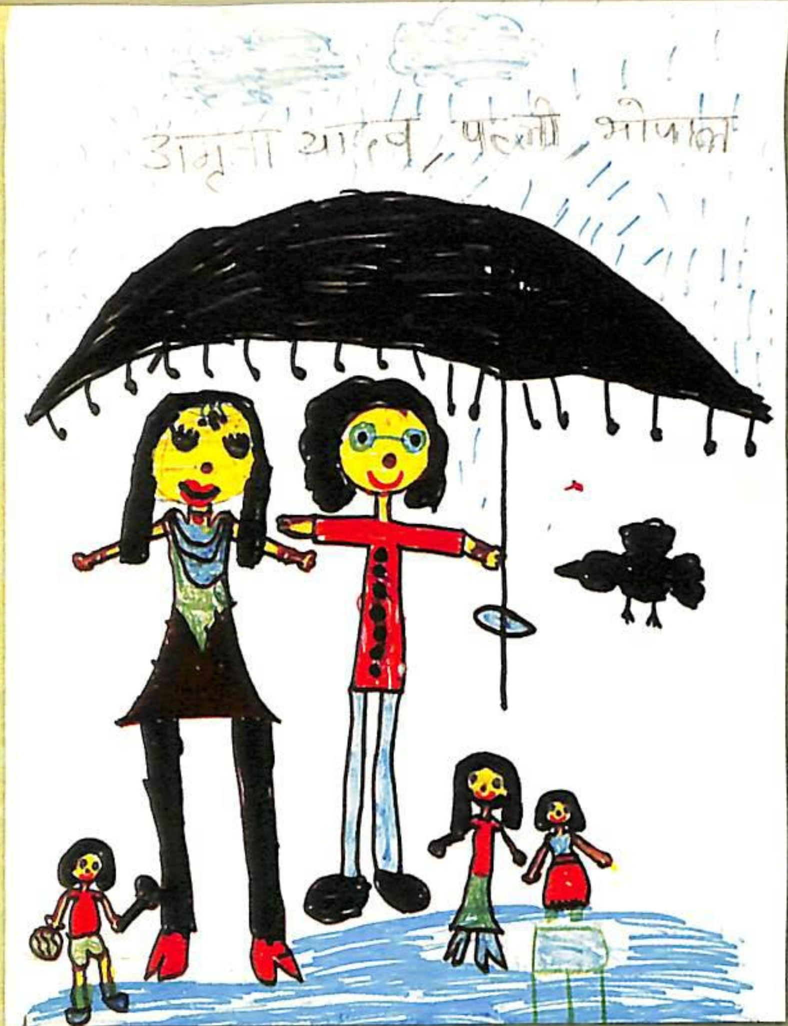
एक घर

एक घर था। उसमें मम्मी-पापा और बच्चा रहते थे। उस घर में एक गार्डन था। गार्डन बहुत अच्छा था पर उसमें एक गड़बड़ थी। उसमें एक साँप का घर था। एक दिन बच्चा अपने दोस्त के साथ गार्डन में खेल रहा था। उसके मम्मी-पापा नाश्ता खा रहे थे। उसी टाइम साँप निकल गया। बच्चा बहुत डर गया। उसने मम्मी और पापा चिल्लाया और कहा कि साँप आ गया। पापा दौड़ते आए। उन्होंने कहा - मैं अभी लकड़ी लाता हूँ। साँप आजा बैठें - पापा बोले। साँप डर गया और बिल में भाग गया और बच्चा और उसका दोस्त टीवी देखने लगे।

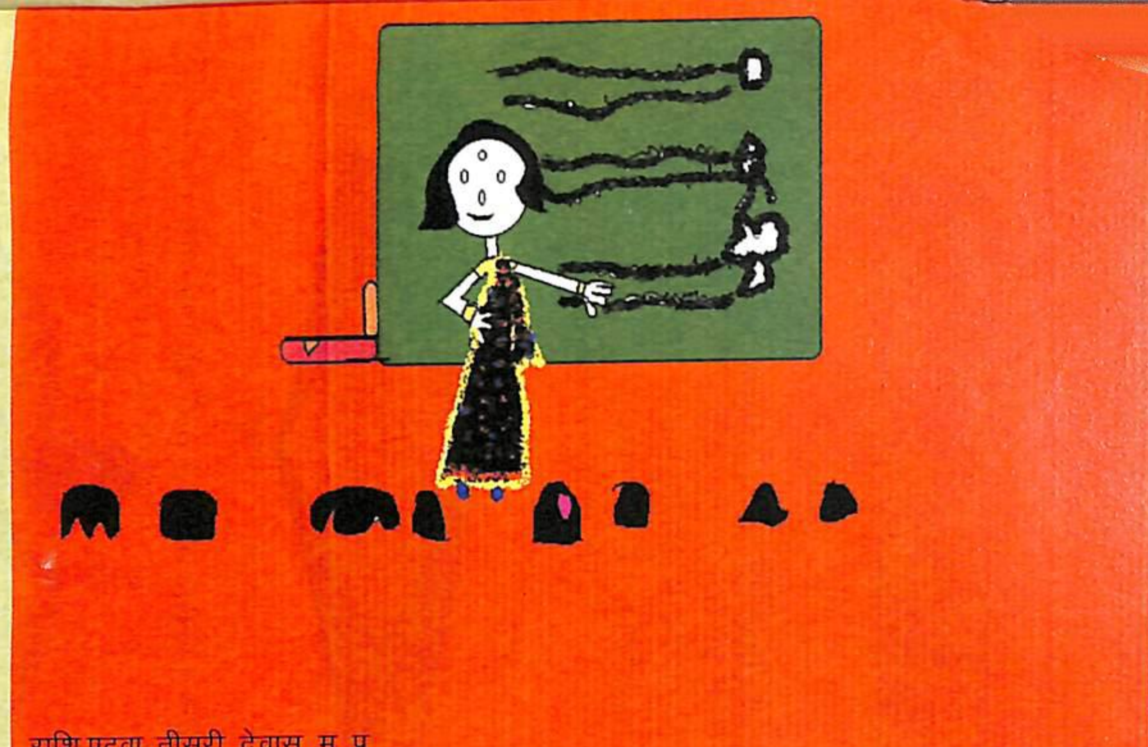
विभु, पहली, होशंगाबाद, म. प्र.



समृद्धि बावस्कर, पहली



अमृता यादव, पहली, भोपाल, म. प्र.


राशि पटवा, तीसरी, देवास, म. प्र.


खुशी, दूसरी, जगतपुरा, राजस्थान


शिवानी प्रकाश लालगे, पाँच वर्ष, फलटण, महाराष्ट्र


शिवाली धोंडियाल, देहरादून, उत्तराखण्ड

रवीन्द्र केसकर

तुम भी बनाओ

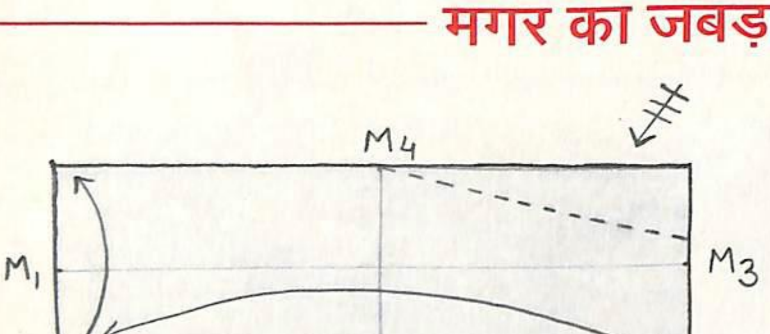
इस कॉलम में कागज़ से अब तक तुमने जो भी खिलौने बनाए, उनकी खासियत थी उनका मुँह - जिसे तुम हिला सकते थे। इसी कड़ी में अगला जीव है

मगरमच्छ।

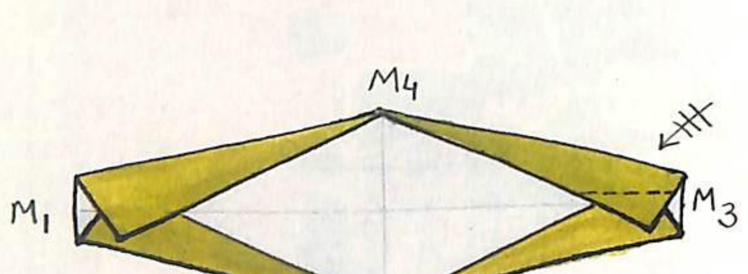
सभी खिलौने में हिलते मुँह की तकनीक (खरगोश के कान) एक-सी है सिर्फ मोड़ अलग-अलग हैं।

कुछ चीज़ों को अलग-अलग टुकड़ों में बनाना आसान होता है। मगरमच्छ की जान तो उसके हिलते हुए जबड़े में है। इसलिए पहले मगर का जबड़ा ही बनाते हैं।

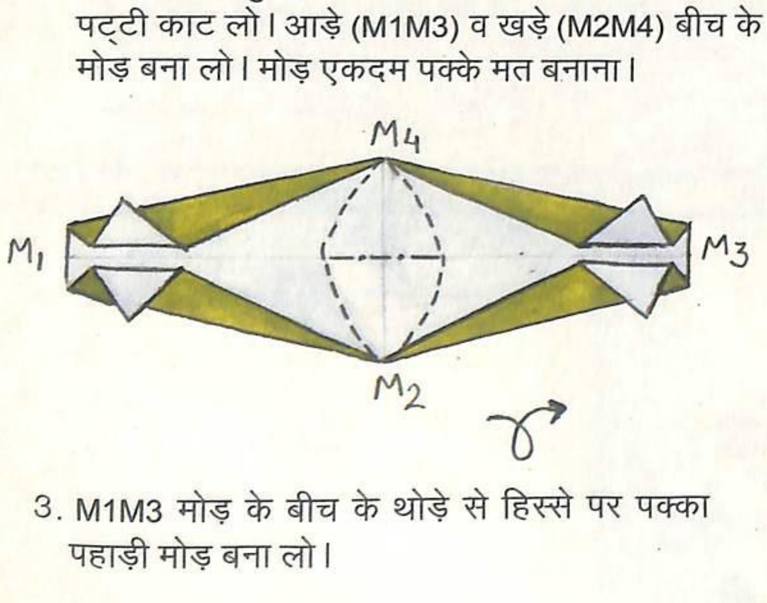
मगर का जबड़ा



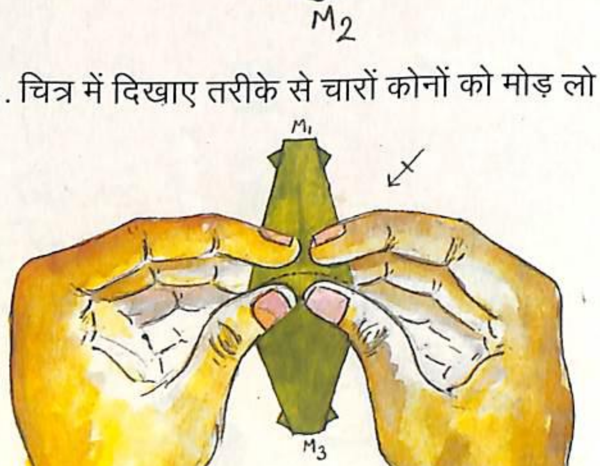
1. कार्डशीट या पुराने कार्ड की 3 इंच चौड़ी व 6 इंच लम्बी पट्टी काट लो। आड़े (M1M3) व खड़े (M2M4) बीच के मोड़ बना लो। मोड़ एकदम पक्के मत बनाना।



2. चित्र में दिखाए तरीके से चारों कोनों को मोड़ लो।



3. M1M3 मोड़ के बीच के थोड़े से हिस्से पर पक्का पहाड़ी मोड़ बना लो।



4. मध्यमा व अँगूठे से आकृति को पकड़ो और तर्जनी से दबाते हुए ऊपर व नीचे दोनों तरफ गोलाई दे दो।

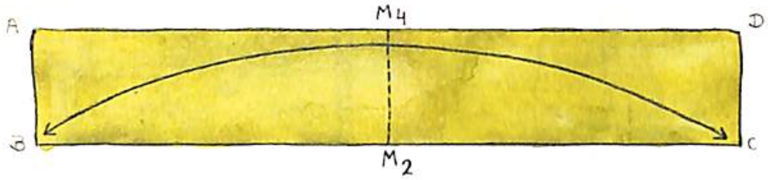


M2 व M4 को दबाने पर मगर अपना मुँह खोलेगा-बन्द करेगा।

संकेत

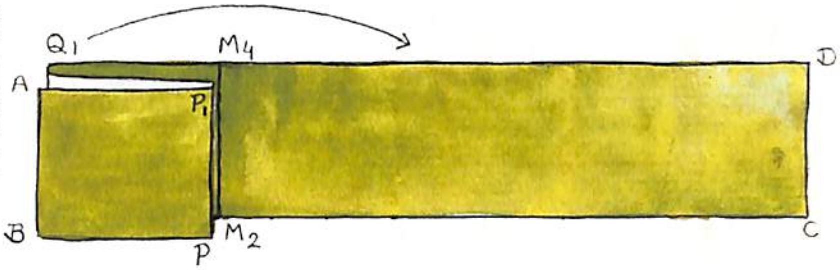
- पहाड़ी मोड़
- खाई मोड़
- कागज़ पलटना
- मोड़कर खोलना
- तीर पर जितनी लकीरे हैं उतनी बार दोहराना

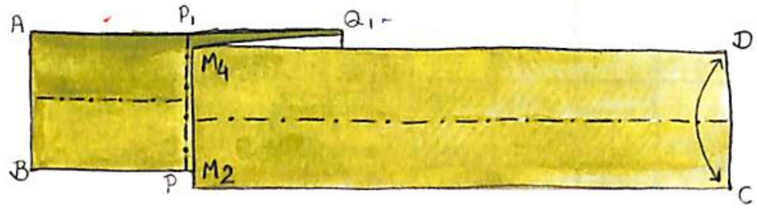




1. इसके लिए लगभग 1 इंच चौड़ी व 10 इंच लम्बी पट्टी लो। कागज़ के दोनों ओर के चारों कोनों को A, B, C, D नाम दो और पट्टी को बीच से मोड़कर खोल लो। इसे M2M4 नाम दे दो।

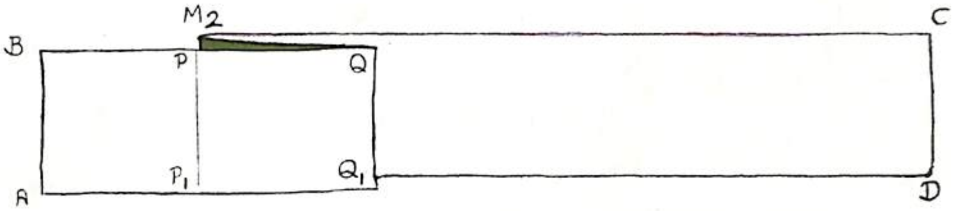
2. बाएँ तरफ के आधे हिस्से को तीन बराबर भागों में बाँटकर PP1 (पहाड़ी मोड़) व QQ1 (खाई मोड़) बना लो। चित्र में दिखाए तरीके से PP1 को M2M4 से मिला दो। M2M4 को बिना खोले QQ1 को घुमाकर पीछे दाईं तरफ मोड़ लो।



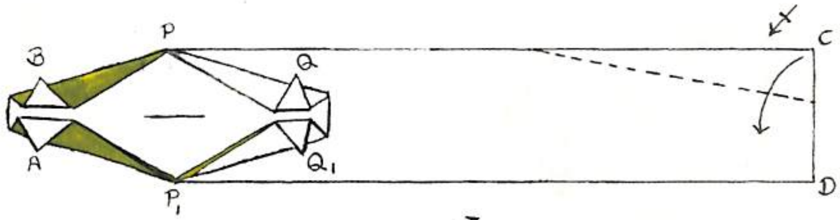


3. पूरी पट्टी को आड़ी मध्यरेखा पर हल्का-सा पहाड़ी मोड़ M1M3 बनाकर खोल लो। इससे मगरमच्छ के शरीर की गोलाई बनी रहेगी। अब कागज़ को पलट लो।

4. AQ1QB आयत से मगरमच्छ का जबड़ा बनेगा। (ऊपर दी गई विधि से)। फर्क इतना है कि दाईं तरफ कागज़ की दुहरी परत होगी। इससे मगर का निचला जबड़ा बनेगा।

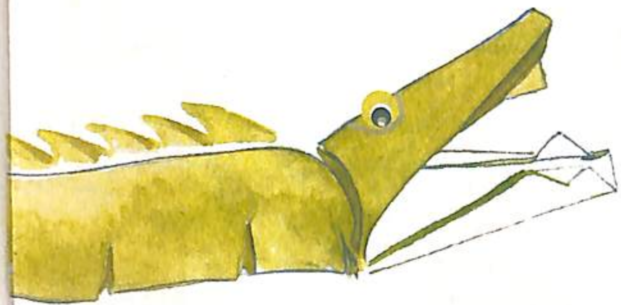


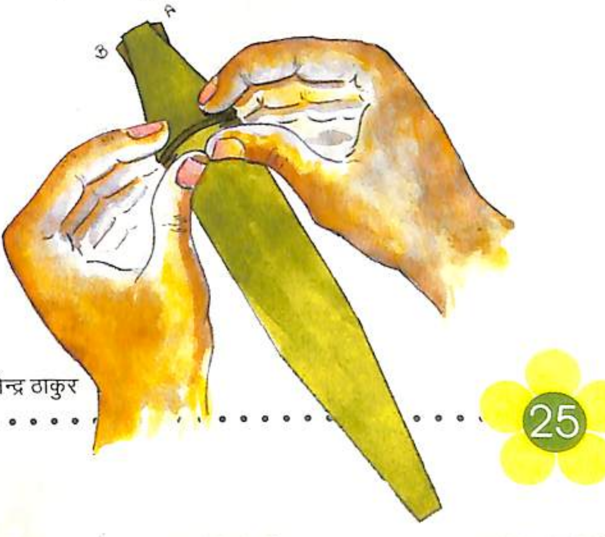
5. मगर की पूँछ को नुकीला बनाने के लिए चित्रानुसार मोड़ बना लो। धड़ को जबड़े की गोलाई से जोड़ने के लिए चित्रानुसार गोलाई देते हुए मोड़ बनाओ।



लो हो गया मगर तैयार।

जब तुम इसके जबड़े दबाओगे तो इसकी पूँछ भी हिलेगी।

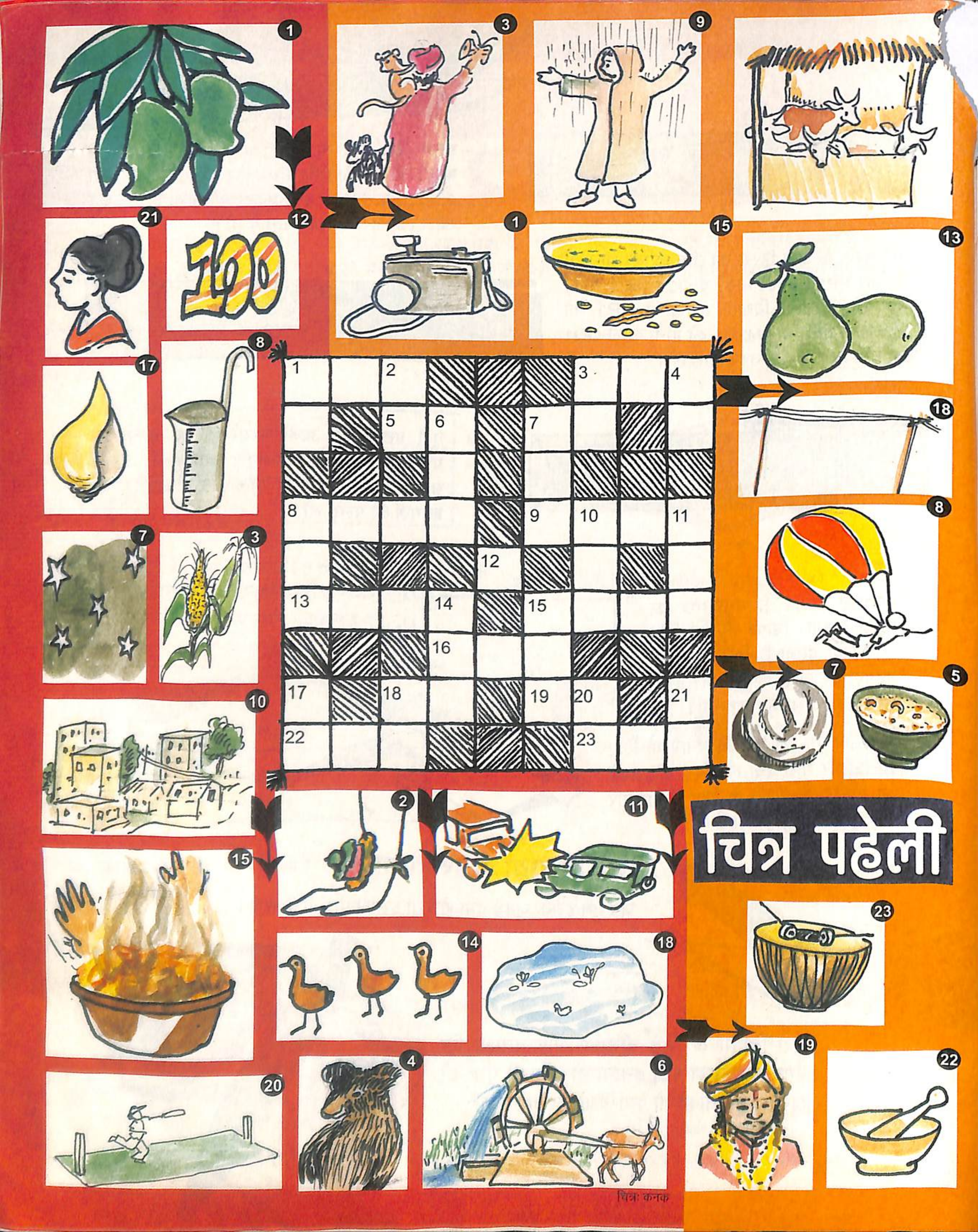




ज़रा दिमाग के घोड़े दौड़ाओ और बताओ कि मगर का जबड़ा बड़ा बनाना हो, इसकी पूँछ को खुरदुरा बनाना हो तो क्या-क्या करना होगा?

चित्र: जितेन्द्र ठाकुर

चित्र पहेली



चित्र: कनक



विनोद कुमार शुक्ल

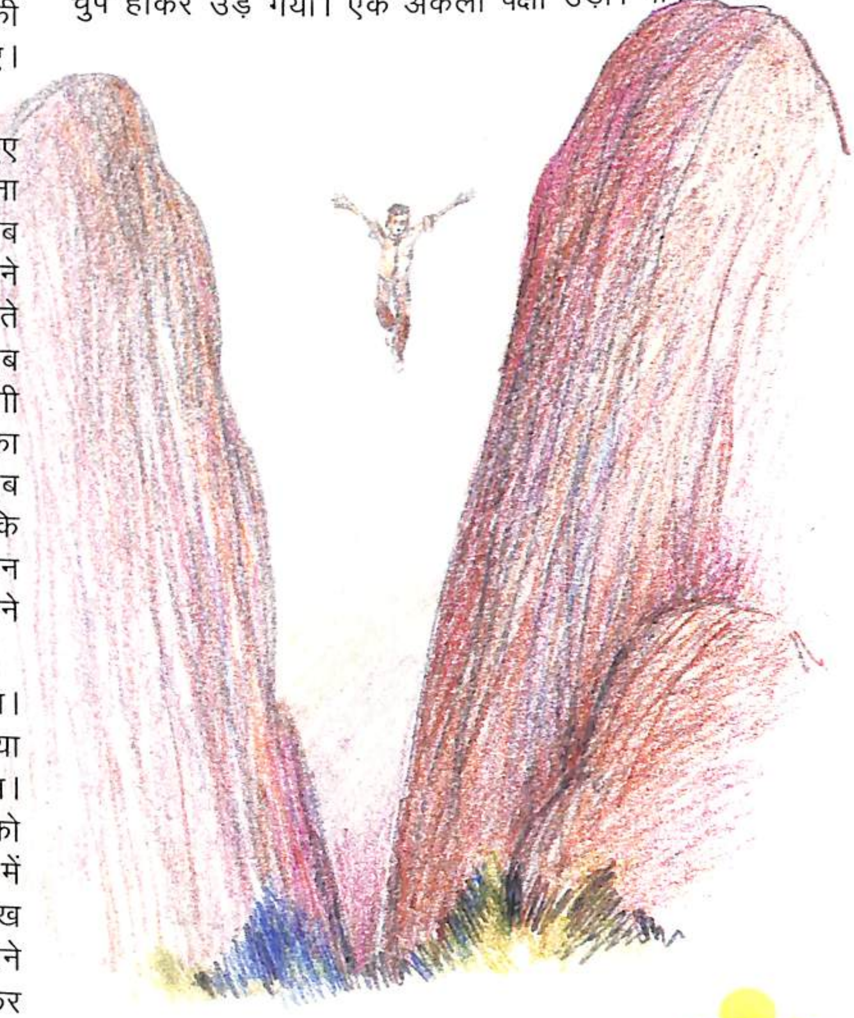
हरी घास की छप्पर वाली झोपड़ी और बौना पहाड़! (VII)

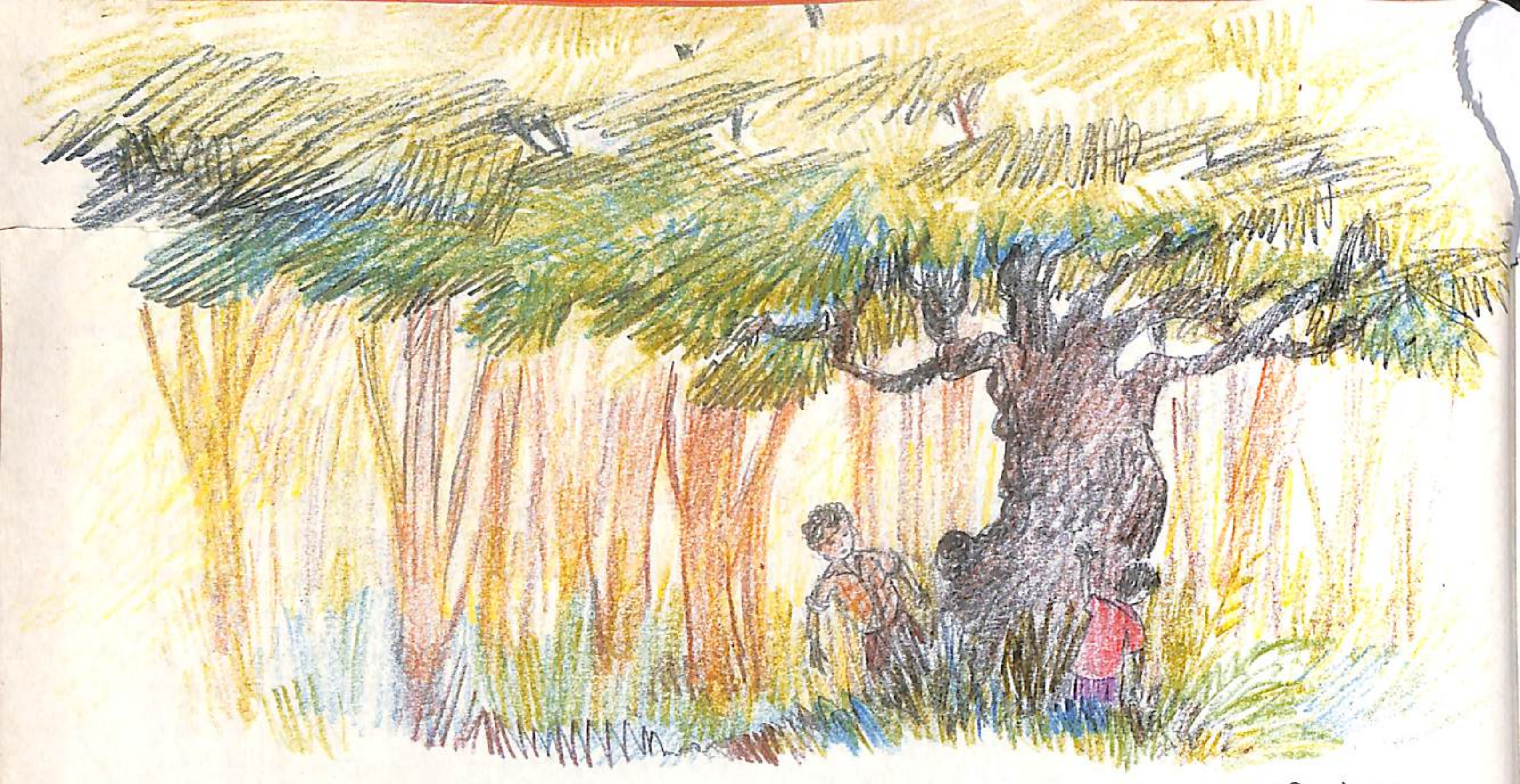
गायब होने से दूसरों से तो गायब हो जाते हैं। दूसरे देख नहीं पाते। पर खुद से भी गायब हो जाते हैं क्या? गायब होकर अपना हाथ देखें तो हाथ दिखाई देगा? दो गायब लोग एक दूसरे को क्या देख सकते हैं? बोलू-कूना के सभी दोस्त गायब होकर छुपाछुपाईल का खेल, खेल सकते हैं? गायब होकर एक दूसरे से कैसे छुपेंगे। जो दिखता होगा उसी की आड़ में छुप जाएँगे। दिखते हुए एक पेड़ के पीछे छुप गए। दिखती हुई चट्टान की आड़ में छुप गए।

दिखती हुई माँ की आड़ में कूना छुप जाए। दिखते हुए बाघ की आड़ में गायब बोलू छुप जाएगा तो भी गायब कूना उसे ढूँढ लेगी। गायब होने से बाघ से डर नहीं लगेगा। गायब होकर बाघ की सवारी की जा सकती है। गायब होकर बौने पहाड़ की गहराई में उतरा जा सकता है क्या? गायब रहते हुए गहराई में गिरेंगे तो चोट लगेगी कि नहीं। और गायब रहते हुए सिक्कों के ढेर में गिरेंगे तो खन्न की आवाज़ होगी कि नहीं। आवाज़ ज़ोर की होगी या धीमे होगी। गायब का वज़न होता है? गायब होने के पहले जितना वज़न था गायब होने पर उतना ही रहेगा। या कुछ ऐसा सूत्र होता होगा कि गायब होने के पहले का वज़न + गायब होने के बाद का वज़न = गायब होने के पहले का वज़न। दूसरा सूत्र कि गायब होने के बाद का वज़न = दिखाई देने के पहले का वज़न।

बोलू शायद बौने पहाड़ की गहराई में उतर सकता था। उसके बड़े होने के किसी एक दिन उसमें यह परिवर्तन आया था कि वह मीठी धुन में गुनगुनाता तो हल्का होने लगता। गुनगुनाना कम करता तो कुछ भारी होने लगता। इसको सन्तुलित कर वह धीरे-धीरे पैराशूट की तरह नीचे गहराई में उतर सकता। अथवा हवा के छोटे-छोटे झोंकों के पंख लगाकर नीचे उतरने का प्रयत्न करे। उतरते ही पंख फैलाने की पर्याप्त जगह मिल जाए। हवा के झोंकों को समेट कर नीचे कूदे और अन्दर फैला ले। पर नीचे की हवा ज़हरीली हो सकती है। दम घुट जाए। रह-रहकर आने वाले हवा के झोंकों की श्रृंखला नीचे उतरने के साथ अन्दर आती रहे। तो खतरा नहीं होगा।

एक हरेवा नाम का पक्षी होता है। हरे रंग का। बुलबुल इतना बड़ा। परन्तु पतरंगी से बिल्कुल भिन्न। हरेवा दूसरे पक्षियों की बोली की नकल करता है। यह कभी जोड़ों में या छोटे झुण्डों में दिखाई देता। एक पेड़ पर अकेले भी। तब जोड़ा पास के दूसरे पेड़ में होता। पेड़ की टहनियों में फुदकता। फुदकने की अनेक कलाबाज़ियाँ दिखाता। इसकी रंग योजना का ताल-मेल हरे पेड़ से इतना होता कि दिखाई नहीं देता। बस बोली की नकल सुनाई देती। लगेगा कि पेड़ पर अनेक पक्षी बैठे हैं जैसे बुलबुल, कोतवाल, शौबीजी, किलकिला, दैयार, दर्ज़ी। और सब एक दूसरे की बोली समझ रहे हैं। एक विमर्श चल रहा है। इस पेड़ के पास एक ठूँठ था। ठूँठ पर पक्षियों की बोली सुनकर नुकीले पंख वाला बाज़ अपने जोड़े के साथ आकर बैठ गया था। यह बाज़ शिकार पकड़ने अपने जोड़े का उपयोग करता है। एक शिकार को हाँकता है और दूसरा झपट्टा मारकर उसे पकड़ता है। हरेवा को जैसे ही भान हुआ कि खतरा है। वह चुप होकर उड़ गया। एक अकेला पक्षी उड़ा। बाकी पक्षी





कोई नहीं था जिनके बोलने की आवाज़ आ रही थी। बाज़ को वहाँ अनेक पक्षियों की आशा थी। हरेवा बच गया।

हरेवा की अपनी बोली कैसी है कोई जान नहीं पाता था। हो सकता है दूसरों की बोली ही उसकी अपनी बोली हो गई हो। दूसरों की बोली बोलते वह अपनी बोली भूल गया था। और सबकी बोली बोलना हरेवा की भाषा हो।

एक दिन एक पेड़ में अकेला हरेवा बैठा था। उस पेड़ में कई चिड़ियों के बोलने की चहचहाहट सुनाई दे रही थी। बोलू पेड़ के नीचे रुककर चिड़ियों की चहचहाहट में कहीं खोने वाला था। चहचहाहट में खंजन की बोली भी सुनाई दे रही थी। परन्तु सचमुच में वहाँ खंजन चिड़िया नहीं थी। खंजन चिड़िया होती तो बोलू के साथ छुपा छुपाईल का खेलने का उसका मन हो जाता। और वह बोलू के सिर के ऊपर की डाली में बैठ जाती और बोलू को अदृश्य कर देती।

हरेवा की तरह बोलू का एक मित्र था। वह सभी मित्रों की आवाज़ में बोलता था। कभी प्रेमू की आवाज़ में कभी बोलू, भैरा की आवाज़ में। कभी कूना की। पेड़ की आड़ में खड़ा होकर उसने बोलू को प्रेमू की आवाज़ में बुलाया। उसे लगा कि प्रेमू बुला रहा है। तभी उसने भैरा की आवाज़ सुनी, "बोलू इधर आओ।" "हम लोग सब हैं।" बीनू की आवाज़ आई, "मैं भी हूँ।" जैसे कूना शरारत से बोल रही हो, "मैं भी हूँ।" अन्त में छोटू ने जैसे किसी की आवाज़ में नहीं कहा। बोलू इस स्वर को पहचान नहीं पाया। छोटू को उसकी आवाज़ से पहचानना कठिन था। छोटू की आदत जैसे पड़ गई थी कि दूसरे की आवाज़ में बात करे। जब कौन बोल रहा है यह समझ में नहीं आता था तो कुछ देर बाद लगता कि छोटू भी हो सकता है। पर यह कठिन था। क्योंकि जब प्रेमू की आवाज़ आ रही है तो उसे पहले छोटू क्यों समझें। प्रेमू क्यों न समझें।

बोलू इधर-उधर देख रहा था। चारों तरफ घने पेड़ थे। पेड़ों की इतनी आड़ थी कि एक पेड़ की आड़ से निकलते तो दूसरे पेड़ की आड़ में चले जाते। बोलू पास के पेड़ के पीछे गया और देखा कि कोई नहीं है। आठ-दस पेड़ों के पीछे झाँकने के बाद उसे कोई नहीं दिखा तो उसे यह भी लगा कि होंगे पर गायब हैं।

इतने में फिर प्रेमू की आवाज़ आई, "बोलू मैं जा रहा हूँ।"

"मैं भी जा रहा हूँ।" बोलू ने भैरा की आवाज़ सुनी।

"मैं भी जा रही हूँ।" बोलू ने कूना की आवाज़ सुनी। सुन-सुनकर बोलू इधर-उधर देखता। जाता हुआ कोई दिखाई नहीं देता। तभी बोलू को करंज के पेड़ के पीछे हरे रंग की कमीज़ की बाँह दिखी। फिर नहीं दिखी। बोलू चुपके से कुछ बोलते हुए जो समझ में नहीं आ रहा था, उस पेड़ के पास गया। पेड़ के पीछे छोटू खड़ा था। बोलू को अभी भी लग रहा था कि कूना और दूसरे लड़के भी यहीं कहीं होंगे। "प्रेमू कहाँ गया?" बोलू ने पूछा। "प्रेमू चला गया।" प्रेमू की ही आवाज़ में छोटू ने कहा। "बीनू नहीं आया पर बीनू को भी मैंने नहीं सुना।" बोलू ने कहा। "बीनू आया था। बीनू भी चला गया।" बीनू की आवाज़ में छोटू ने कहा। छोटू जब सबके साथ होता तो प्रायः छोटू के अलावा दूसरे चुप होते। लेकिन कभी तो बोलना पड़ता। जैसे छोटू बोलेगा, "मैं जानता हूँ तुम लोग

मेरे साथ खेलना पसन्द नहीं करते।" कूना की आवाज़ में वह कहेगा। जब कूना की आवाज़ में यह कह रहा है तो वहाँ बैठी कूना को लगेगा कि उसके साथ तो ऐसा नहीं है। उसके साथ सब खेलना पसन्द करते हैं। वह बोल पड़ेगी, "मेरे साथ खेलना सबको अच्छा लगता है।" "मैं अपने लिए बोल रहा हूँ।" छोटू कहेगा, परन्तु बीनू की आवाज़ में। ऐसी स्थिति में तब यह होता कि तत्काल बीनू जवाब देता, "मेरे साथ खेलने को कोई मना नहीं करता।" "मैं अपने लिए बोल रहा हूँ न।" छोटू कहेगा परन्तु भैरा की आवाज़ में। तब भैरा बोलता, "सच बात है। मैं कुछ बुद्धू हूँ न, इसलिए मेरे साथ खेलना कम पसन्द करते हैं।" तब सब भैरा से एक साथ बोलते जिसमें छोटू भी शामिल होता, "हम सब तुम्हारे मित्र हैं। तुम्हारे साथ खेलना हमको अच्छा लगता है।" सबके एक साथ बोलने में छोटू ने किसकी आवाज़ में कहा यह समझ नहीं आता होगा। हो सकता है सबकी आवाज़ के साथ छोटू अपनी आवाज़ में बोलता हो। उसे लगता हो कि सबके साथ उसकी अपनी आवाज़ होनी चाहिए।

सबके बोलने के बाद जिसमें वह भी शामिल था। "मैं अपने लिए कह रहा था।" बोलू की आवाज़ सुनाई दी पर छोटू बोल रहा था। जब बोलू की आवाज़ सुनाई दी थी तो सबकी दृष्टि बोलू की तरफ गई। बोलू बैठा हुआ था। बोलते हुए चला नहीं था। "छोटू हमको तुम्हारे साथ खेलना अच्छा लगता है।" उठकर चलते हुए बोलू छोटू के पास गया और उसके पास बैठ गया।

इन्हीं सब कारणों से छोटू अधिकतर अकेले खेलना पसन्द करता। अकेले खेलते समय भी इस तरह खेलता कि सब उसके साथ हैं। अकेले खेलते हुए वह अपने मित्रों की आवाज़ में बात करता। कोई छोटू को यदि देख नहीं रहा है कि छोटू अकेला है तो उसे लगेगा बहुत से बच्चे खेल रहे हैं।

छोटू अकेला है। वह बीनू की आवाज़ में बोलता है, "प्रेमू बता आज क्या खेलें।" "नहीं, बीनू तुम बताओ। तुम कभी बताते नहीं तुमको क्या खेलना अच्छा लगता है।" प्रेमू की आवाज़ में छोटू ने कहा। "अच्छा छोटू से पूछते हैं।" बीनू की आवाज़ आती है, "छोटू तो कुछ बोलता नहीं।"

"छोटू क्या बोलेगा। सबकी तरफ से बोलता है। अपनी तरफ से कुछ नहीं बोलता।" प्रेमू की आवाज़ आती है। छोटू फिर प्रेमू की आवाज़ में प्रश्न पूछता है, "बीनू बता मेरे साथ खेलेगा।" इतने प्यार से यह पूछता है कि लगता है कि प्रेमू कितना अच्छा लड़का है। फिर बीनू की आवाज़ में जवाब देता है, "जा मैं तेरे साथ नहीं खेलूँगा।" तब लगता है कि बीनू गन्दा लड़का है। "क्यों नहीं खेलेगा।" छोटू प्रेमू की आवाज़ में पूछता है। "इसलिए कि तू प्रेमू नहीं है। छोटू है।" बीनू की आवाज़ में छोटू बोलता है।

तब कूना की आवाज़ आती है, "बीनू तुझको चिढ़ा रहा है। तेरे साथ ज़रूर खेलेगा।"

इस तरह का खेल छोटू खेलता। अकेले छोटू का खेल जब समाप्त होता तो वहाँ सन्नाटा छा जाता। छोटू बोलू की आवाज़ में बात करता तो जैसे बोलू बात करते हुए चलता है वैसे ही छोटू भी चलता। अकेले छोटू के चुप होते जैसे बहुत से लोग चुप हो जाते।

उड़ती खंजन के नीचे आए लोग, पलक झपकने में जितना समय लगता उतने समय के लिए गायब होते। उनके गायब होने का पता नहीं चलता था। आँख बन्द होने से कुछ दिखाई नहीं देता पर गायब होना दिखना चाहिए। अर्थात् जो नहीं दिख रहा है वह देखने से नहीं दिख रहा है। अगर देर तक आँख बन्द कर लें तब देर तक नहीं दिखना देर तक गायब होने जैसा नहीं। गायब होने में जो गायब होता है बस वही नहीं दिखाई देता बाकी सब दिखाई देते हैं।

जिसकी आँखें नहीं, जो अन्धा है उसके लिए कोई दृश्य नहीं है। उनकी दृष्टि कल्पना है। एक अन्धा कल्पना करता है वैसा हूबहू दूसरा अन्धा नहीं कर पाता। जिसकी आँखें होती हैं जिस पेड़ को वह जैसा देख रहा होता है हूबहू दूसरा भी उस पेड़ को वैसा देख रहा होता। इसलिए जिसको देखकर यह जाना जाता कि चन्द्रमा है। उसे दूसरा भी देखकर जान जाता कि चन्द्रमा है। देखकर जानना जानकारी है तो नहीं देखकर जानना भी जानकारी है। किसी को टटोलने के लिए एकदम निकट जाना होता है। अन्धे संसार के सबसे निकट होते हैं। इतने निकट कि वे संसार को स्पर्श करते हैं। उनका अँधेरा दृष्टि का सन्नाटा होता है। जिसमें स्पर्श के सिवाए कुछ बचा नहीं होता।

बच्चे जो देख रहे थे उसको जान रहे थे। जो नहीं देख रहे थे उसे भी जान रहे थे। आँख में पट्टी बाँधकर खेलने का खेल उन्हें नहीं दिखने का अनुभव सिखा रहा था कि बिना देखे ढूँढो कहाँ हैं। चकमक

जारी...

मई अंक की चित्र पहेली का हल

जो		पा	द	प		बै	सा	खी
क	म	ल		न	क्शा		र	
र		ना		ध		फ	स	ल
	मो		मी	ट	र			ह
का	र	खा	ना		स	र	दा	र
ग			र	क	म		ड़ी	
ज	वा	न		थ		क		गि
	न		ए	क		ने	व	ला
झ	र	ना		ली	व	र		स

मॉर्निंग वॉक इन भोपाल



योची यामागाटा

शायद ही कोई हो जिसका मन दुनिया भर में घूमते रहने को न करता हो। योची का मन भी करता था। यही कि वो दुनिया भर में घूमें। अलग-अलग देशों के लोगों से मिलें। वहाँ रहें। वहाँ कई दिनों रहें। वहीं के होकर रह जाएँ। तुम सोच रहे होगे ये योची हैं कौन? योची जापान के ओसाका के रहने वाले हैं। योची फिलहाल भोपाल, म.प्र. में हैं। इससे पहले वे दुनिया के कई देशों में रह चुके हैं। काम कर चुके हैं। दिखने में वो 40 साल के लगते हैं पर उनकी एक किताब में लिखा है कि वे 1946 में पैदा हुए हैं। उनकी किताब का ज़िक्र आने से कहीं तुम उन्हें लेखक तो नहीं समझ बैठे। वे लिखते नहीं चित्र बनाते हैं। चित्र भी नहीं, स्कैच बनाते हैं। सुबह उठकर दूर तक टहलना उनका शौक है। वो कहते हैं शायद इसी की



योची यामागाटा की नज़र में भोपाल का रुस्तम खाँ का अहाता

चार्ली चैप्लिन के कथन

- बेकार गया वो दिन जिस दिन हँसी-ठट्ठा न हो।
- हम सोचते बहुत हैं, महसूसते कम हैं।
- ज़िन्दगी करीब से देखो तो ट्रेजेडी है और दूर से देखो तो कॉमेडी।
- मेरी नज़र में सबसे दुखद बात है सुविधाओं का गुलाम हो जाना।





रुस्तम खाँ के अहाते के बाशिन्दे पन्ना लाल और रानी सुबह-सवेरे सब्ज़ी का अपना ठेला सजाते हुए।

बदौलत वे इतने फिट हैं। टहलने जाते वक्त उनके हाथ में एक झोला ज़रूर होता है। इस झोले में कुछ रंग-बिरंगी पेंसिलें, स्कैच बुक, कुछ कोरे कागज़ होते हैं। गली-मोहल्लों से गुज़रते वक्त बच्चे घरों से दौड़े आते हैं, "चित्र बनाने वाले आ गए..." का शोर गलियों में फैल जाता है। अब तक वे रुस्तम खाँ का अहाता (यह जगह अक्सर उनकी सुबह की सैर का पड़ाव होती है) के कितने ही लोगों का स्केच बना चुके हैं। अभी हमने जिस किताब की बात की उसका नाम है *मार्निंग वॉक इन भोपाल* यानी भोपाल में सुबह की सैर। इस किताब में भोपाल की सुबहों के कोई पचास चित्र होंगे। झटपट बनाए अनगढ़ से स्कैच।

वे कहते हैं, इन स्कैच से मुझे शहर और लोगों से पहचान बढ़ाने में बड़ी मदद मिली। इन्हें देखकर कितना कुछ याद आता है। इनको बनाते हुए की गईं गपशपें, साथ-साथ पी गई कई चायें, पोहे-जलेबियाँ, हँसी-ठट्ठे, दोस्तियाँ। और हाँ, भाषा सीखना भी इनके बिना अधूरा ही रहता।

योची मिलने-जुलने वाले व्यक्ति हैं। हिन्दी लिखना-पढ़ना जानते हैं। तुम चाहो तो उन्हें चिट्ठी लिख सकते हो। उनका पता है:

योची यामागाटा
22, नादिर कॉलोनी, श्यामला हिल्स
भोपाल 462013

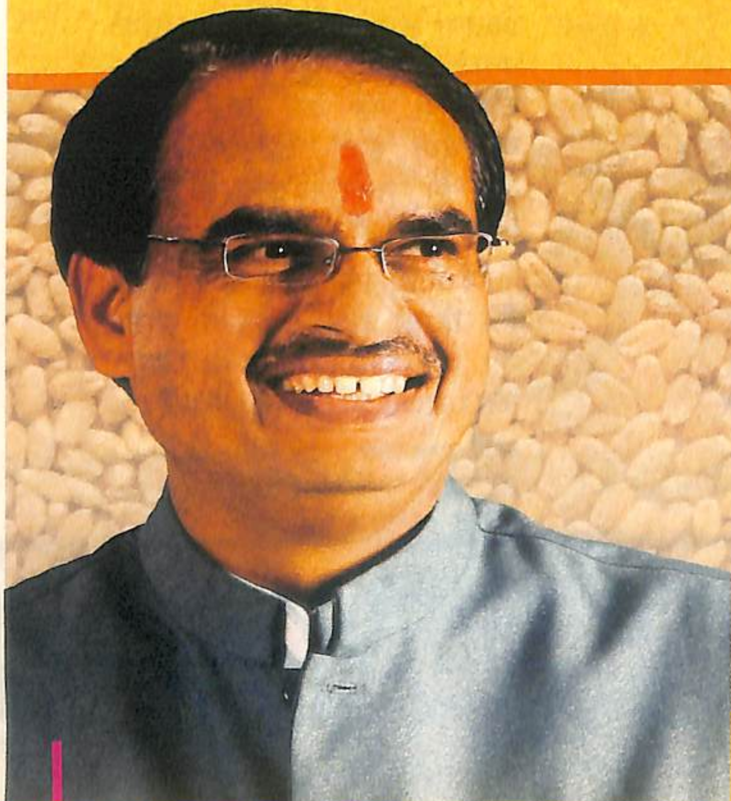


- अन्त में, सब मज़ाक है।
- इस ज़ालिम दुनिया में कुछ भी हमेशा रहने वाला नहीं है, मुसीबतें भी नहीं।
- अपने आप पर विश्वास होना सबसे बड़ी कुँजी है। जब मैं अनाथालय में था, जब मैं खाने की जुगाड़ में गलियों में घूमा करता था, तब भी मैं खुद को दुनिया का सबसे महान अभिनेता मानता था।
- मुझे बारिश में चलना पसन्द है, मेरे आँसू जो नहीं देख पाता है कोई।

राज्य सरकार का एक बड़ा फैसला

मध्यप्रदेश के 2 करोड़ नागरिकों को

3 रुपये किलो **गेहूँ** और **4.50** रुपये किलो **चावल**



योजना के हितग्राही:

प्रदेश के साढ़े पैंतालीस लाख बी.पी.एल. (गरीबी रेखा के नीचे) परिवार जिन्हें नीला राशन कार्ड जारी है। इसके अलावा 87 हजार और परिवार शीघ्र ही योजना में शामिल हो जायेंगे। ये परिवार बी.पी.एल. सूची में शामिल हो चुके हैं और इनके राशनकार्ड बनाने की कार्यवाई हो रही है।

कितना गेहूँ-चावल :

नीले राशन कार्ड प्राप्त गरीबी रेखा के नीचे के परिवारों को उचित मूल्य की दुकानों से हर महीने 20 किलो अनाज (गेहूँ + चावल) मिलेगा।

कब से :

योजना अप्रैल माह से लागू होगी।

इस गरीबपरवर योजना में कोई गड़बड़ी न होने देना हम सबकी साझी जिम्मेदारी है।

शिवराज सिंह चौहान
मुख्यमंत्री

मध्यप्रदेश जनसंपर्क द्वारा जारी

D67067 दिनांक 14-5-2008

एक बार की बात है...

अकबर ने बीरबल से पूछा, "लोग कहते हैं कि बुढ़ापा फिर से आ गया बचपन है। तुम्हें क्या लगता है?"

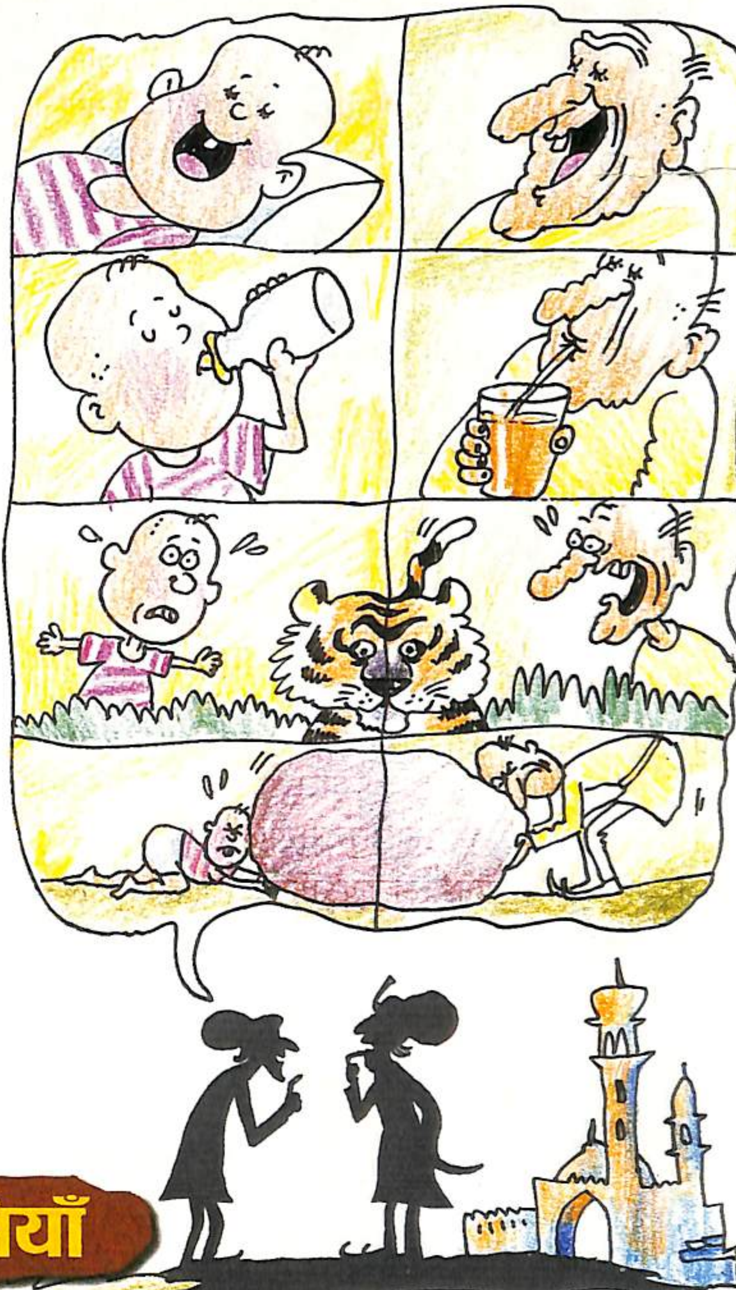
बीरबल बोला, "जहाँपनाह, यह सही है। अकबर ने कहा-कैसे?"

बीरबल बोला, "जहाँपनाह, जब मैं बच्चा था तब मेरे दाँत नहीं थे, बूढ़ा हो जाऊँगा तब भी मेरे दाँत नहीं रहेंगे। बचपन में खिलौनागाड़ी के सहारे चलता था, बूढ़ा हो जाऊँगा तब भी लकड़ी के सहारे ही चल पाऊँगा। बचपन में अकेला घूमने नहीं जा सकता था, बुढ़ापे में भी नहीं जा पाऊँगा। बचपन में खाना चबाकर नहीं खा पाता था, बूढ़ा हो जाऊँगा तब भी खाना चबाकर नहीं खा पाऊँगा। यानी बचपन और बुढ़ापा एक ही चीज़ है।"

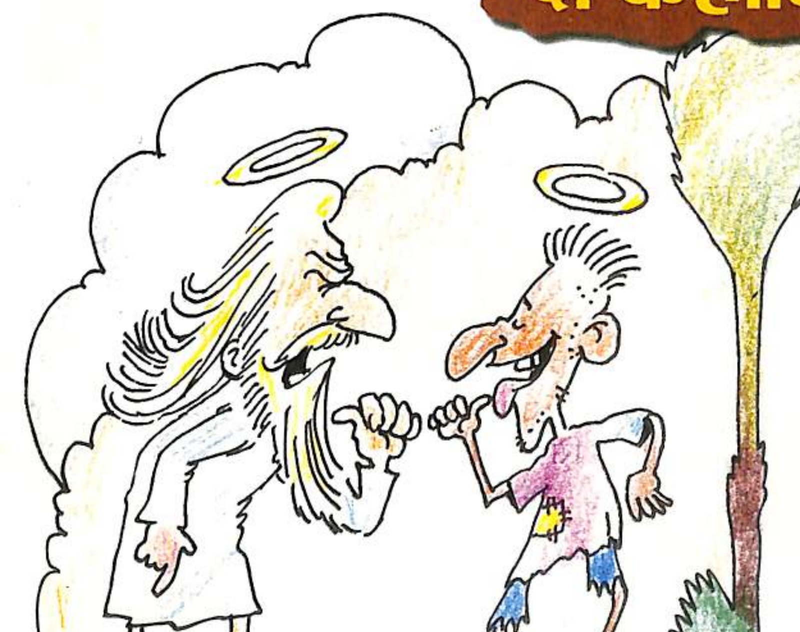
बादशाह अकबर ने कहा, "बीरबल, तो फिर जवानी और बुढ़ापे में क्या फर्क है?"

बीरबल बोला, "जहाँपनाह, कोई फर्क नहीं है। आज मैं कुतुबमीनार से छलाँग नहीं लगा सकता, बूढ़ा होने पर भी छलाँग नहीं लगा पाऊँगा। आज मैं एक टन का पत्थर नहीं उठा सकता, जब बूढ़ा हो जाऊँगा तब भी इतना वज़नी पत्थर नहीं उठा पाऊँगा। आज मैं सूर्य को पूर्व में उगता देखता हूँ, जब बूढ़ा हो जाऊँगा तब भी तो सूर्य को पूर्व से निकलता हुआ ही देखूँगा। आज मैं कौन बाघ-शेर के सामने जा सकता हूँ, जब बूढ़ा हो जाऊँगा तो भी तो नहीं जा पाऊँगा।"

इसलिए मुझे तो बुढ़ापे और जवानी में ज़्यादा फर्क नहीं दिखाई देता।



दो कहानियाँ



ईश्वर की कहानी

एक बार एक पागल से ईश्वर का सामना हुआ। उसने सफाई दी, "मैं पागल नहीं हूँ। मैं कहता हूँ कि मैं ईश्वर हूँ तो सब मुझे पागल समझते हैं जबकि मैं ईश्वर हूँ।"

ईश्वर ने कहा, "लेकिन ईश्वर तो मैं हूँ तुम नहीं।"

पागल ने जवाब दिया, "चुप, चुप। किसी ने सुन लिया तो तुझे भी पागल समझेगा।"

ईश्वर ने आस-पास देखा, खुशकिस्मती से किसी ने सुना नहीं था। वे चुपचाप आगे बढ़ गए।

विष्णु नागर



इन दोनों चित्रों में कितने अन्तर हैं?





जैसलमेर एक सुनहरा शहर

इस लेख का पहला हिस्सा *चकमक* के मई अंक में छपा था। प्रस्तुत है बाकी हिस्सा...

सम

जैसलमेर से 45 किलोमीटर दक्षिण-पश्चिम में सम है। जहाँ दूर-दूर तक बिखरे रेत के टीले हैं। तेज़ हवाओं से रेत की ऊपरी सतह हमेशा हिलती रहती है और उस पर लहरों जैसी धारियाँ पड़ जाती हैं। एक छोटी झाड़ी या पत्थर में भी रेत को रोकने की क्षमता होती है। रेत भारी होती है इसीलिए हवा उसे ज़्यादा ऊपर तक नहीं उठा पाती है। रास्ते में किसी भी रुकावट के आने से कुछ रेत वहीं गिर जाती है और धीरे-धीरे टीले में बदल जाती है। तेज़ हवाओं से इनका स्वरूप हमेशा बदलता रहता है।

बार्डर रोड ऑर्गनाईज़ेशन (बी.आर.ओ.) की सड़क हमें सम मरुभूमि तक ले गई। मीलों तक लगभग समतल मैदान, कुछ चट्टानें, झाड़ियाँ और बारिश की कमी से सूखी घास... आबादी का नामोंनिशान नहीं। भेड़-बकरियाँ सूखी घास पर चर रही थीं। यहाँ के चरवाहों का जीवन बहुत ही मुश्किल होता है। सारा जीवन एक से दूसरे चरागाह की खोज में बीत जाता है। मैं सोचने लगी कि यही सुन्दर सड़क दो महीने बाद कितनी दुखदाई हो जाएगी। तेज़ गर्मी, चिलचिलाती धूप और पानी का नामोंनिशान नहीं। फरवरी के अन्त से सैलानियों की संख्या कम होने लगेगी। साथ ही आमदनी का एक बड़ा ज़रिया भी कई महीनों के लिए बन्द हो जाता है।

कुछ दिन पहले जैसलमेर के आसपास बारिश हुई थी। सभी गड्ढे पानी से भरे थे। हमारी जीप का ड्राईवर इस बारिश से बेहद नाखुश था। कहने लगा, "इस बारिश का क्या फायदा? अभी न तो ज्वार, बाजरा ही बो सकते हैं और न ही ग्वार...। शायद कुछ घास उग जाए बस... । सारा पानी बेकार चला गया।"

सम से कुछ पहले से ही ऊँटों के झुण्ड नज़र आने लगे। कुछ सैलानी ऊँटों पर बैठकर राष्ट्रीय मरू उद्यान की सैर करते हैं, तो कुछ टीलों तक ही जाते हैं। हमने भी एक ऊँट ले लिया। ऊँटवाला दिलबर खान पास के एक गाँव का था। ज़्यादातर ऊँटवाले उसी गाँव से यहाँ आते हैं। उसने हमें इस इलाके के बारे में बहुत कुछ बताया।

यहाँ एक ऊँट सात से दस हज़ार तक का होता है। 2-3 साल की उमर से उसे सिखाना पड़ता है – कैसे चलो, कब रुको वगैरह। ऊँट को एक दिन में लगभग 20 किलो चारा चाहिए। पिछले दो साल के सूखे की वजह से यहाँ हालात काफी खराब हैं। उसके अपने गाँव में 40 ऊँट भूख से मर गए। दिलबर भरे दिल से बोला, "मैडम इन्सान के लिए अनाज नहीं है तो जानवर के लिए ग्वार कहाँ से लाएँ? आप लोग यहाँ घूमने आते हैं तो दो-चार पैसे कमा लेते हैं, नहीं तो शहरों में मज़दूरी के लिए भटकते रहते हैं।"

उसकी बातें सुनते-सुनते हम काफी दूर तक चले गए। अब हमें राष्ट्रीय मरू उद्यान की तार वाली बाड़ नज़र आ रही थी। बाड़ के उस पार एक ऊँट बैठा था और एक औरत उसे कुछ खिलाने की कोशिश कर रही थी। पता चला कि ऊँट कल रात से वहीं बैठा है। भूख से मर रहा है। दिलबर ने बताया कि ऊँट जब बैठ जाता है और उठने से इंकार कर देता है तब समझ लो उसका आखिरी समय आ गया है।

रेत के इन टीलों पर कुछ काफी ऊँची झाड़ियाँ थीं, सभी एक तरह की। ऊँट से भी ऊँची। इन्हें देख मैं हैरान रह गई। दिलबर खान ने इसका नाम आकड़ा बताया। मैं इसे बचपन से आक के नाम से जानती हूँ। दिल्ली, यू. पी. में यह एक छोटी झाड़ी की तरह होता है – मुश्किल से दो-ढाई फुट ऊँचा। बचपन में हम आक के पत्तों से मोनार्क तितली के लार्वा को पकड़कर बोतल में पाला करते थे। उसके खाने के लिए आक का पत्ता बोतल में डाल दिया करते। लार्वा प्यूपा में बदलकर बोतल के ढक्कन से लटका रहता। फिर कुछ दिनों बाद उस में से तितली निकलकर उड़ जाती। हम भागकर अम्मा जी को बताते जो हमेशा नई-नई चीज़ें करने के लिए हमें उत्साहित किया करती थीं।



इन दोनों चित्रों में कितने अन्तर हैं?





जैसलमेर एक सुनहरा शहर

इस लेख का पहला हिस्सा *चकमक* के मई अंक में छपा था। प्रस्तुत है बाकी हिस्सा...

सम

जैसलमेर से 45 किलोमीटर दक्षिण-पश्चिम में सम है। जहाँ दूर-दूर तक बिखरे रेत के टीले हैं। तेज़ हवाओं से रेत की ऊपरी सतह हमेशा हिलती रहती है और उस पर लहरों जैसी धारियाँ पड़ जाती हैं। एक छोटी झाड़ी या पत्थर में भी रेत को रोकने की क्षमता होती है। रेत भारी होती है इसीलिए हवा उसे ज़्यादा ऊपर तक नहीं उठा पाती है। रास्ते में किसी भी रुकावट के आने से कुछ रेत वहीं गिर जाती है और धीरे-धीरे टीले में बदल जाती है। तेज़ हवाओं से इनका स्वरूप हमेशा बदलता रहता है।

बार्डर रोड ऑर्गनाईज़ेशन (बी.आर.ओ.) की सड़क हमें सम मरुभूमि तक ले गई। मीलों तक लगभग समतल मैदान, कुछ चट्टानें, झाड़ियाँ और बारिश की कमी से सूखी घास... आबादी का नामोंनिशान नहीं। भेड़-बकरियाँ सूखी घास पर चर रही थीं। यहाँ के चरवाहों का जीवन बहुत ही मुश्किल होता है। सारा जीवन एक से दूसरे चरागाह की खोज में बीत जाता है। मैं सोचने लगी कि यही सुन्दर सड़क दो महीने बाद कितनी दुखदाई हो जाएगी। तेज़ गर्मी, चिलचिलाती धूप और पानी का नामोंनिशान नहीं। फरवरी के अन्त से सैलानियों की संख्या कम होने लगेगी। साथ ही आमदनी का एक बड़ा ज़रिया भी कई महीनों के लिए बन्द हो जाता है।

कुछ दिन पहले जैसलमेर के आसपास बारिश हुई थी। सभी गड्ढे पानी से भरे थे। हमारी जीप का ड्राईवर इस बारिश से बेहद नाखुश था। कहने लगा, "इस बारिश का क्या फायदा? अभी न तो ज्वार, बाजरा ही बो सकते हैं और न ही ग्वार...। शायद कुछ घास उग जाए बस... । सारा पानी बेकार चला गया।"

सम से कुछ पहले से ही ऊँटों के झुण्ड नज़र आने लगे। कुछ सैलानी ऊँटों पर बैठकर राष्ट्रीय मरू उद्यान की सैर करते हैं, तो कुछ टीलों तक ही जाते हैं। हमने भी एक ऊँट ले लिया। ऊँटवाला दिलबर खान पास के एक गाँव का था। ज़्यादातर ऊँटवाले उसी गाँव से यहाँ आते हैं। उसने हमें इस इलाके के बारे में बहुत कुछ बताया।

यहाँ एक ऊँट सात से दस हज़ार तक का होता है। 2-3 साल की उमर से उसे सिखाना पड़ता है – कैसे चलो, कब रुको वगैरह। ऊँट को एक दिन में लगभग 20 किलो चारा चाहिए। पिछले दो साल के सूखे की वजह से यहाँ हालात काफी खराब हैं। उसके अपने गाँव में 40 ऊँट भूख से मर गए। दिलबर भरे दिल से बोला, "मैडम इन्सान के लिए अनाज नहीं है तो जानवर के लिए ग्वार कहाँ से लाएँ? आप लोग यहाँ घूमने आते हैं तो दो-चार पैसे कमा लेते हैं, नहीं तो शहरों में मज़दूरी के लिए भटकते रहते हैं।"

उसकी बातें सुनते-सुनते हम काफी दूर तक चले गए। अब हमें राष्ट्रीय मरू उद्यान की तार वाली बाड़ नज़र आ रही थी। बाड़ के उस पार एक ऊँट बैठा था और एक औरत उसे कुछ खिलाने की कोशिश कर रही थी। पता चला कि ऊँट कल रात से वहीं बैठा है। भूख से मर रहा है। दिलबर ने बताया कि ऊँट जब बैठ जाता है और उठने से इंकार कर देता है तब समझ लो उसका आखिरी समय आ गया है।

रेत के इन टीलों पर कुछ काफी ऊँची झाड़ियाँ थीं, सभी एक तरह की। ऊँट से भी ऊँची। इन्हें देख मैं हैरान रह गई। दिलबर खान ने इसका नाम आकड़ा बताया। मैं इसे बचपन से आक के नाम से जानती हूँ। दिल्ली, यू. पी. में यह एक छोटी झाड़ी की तरह होता है – मुश्किल से दो-ढाई फुट ऊँचा। बचपन में हम आक के पत्तों से मोनार्क तितली के लार्वा को पकड़कर बोतल में पाला करते थे। उसके खाने के लिए आक का पत्ता बोतल में डाल दिया करते। लार्वा प्यूपा में बदलकर बोतल के ढक्कन से लटका रहता। फिर कुछ दिनों बाद उस में से तितली निकलकर उड़ जाती। हम भागकर अम्मा जी को बताते जो हमेशा नई-नई चीज़ें करने के लिए हमें उत्साहित किया करती थीं।



देश की आज़ादी के पचास साल बाद भी हम अनाज और चारे की पैदावार क्यों नहीं बढ़ा पाए हैं? यह प्रश्न काफी देर तक दिमाग में घूमता रहा। इस मरुभूमि में जहाँ घास तक नहीं है वहाँ लकड़ी के जीवाश्म होना कुछ अजीब है ना! राजस्थान के जैसलमेर और बाड़मेर ज़िले में लगभग 3162 वर्ग किलोमीटर में फैला है राष्ट्रीय मरू उद्यान। यह 1981 में स्थापित हुआ था। अब वुड फॉसिल पार्क भी इसी में आता है। फॉसिल पार्क पथरीली ज़मीन में है। कहीं ऊँची-नीची पहाड़ियाँ तो कहीं घास और झाड़ियाँ नज़र आ रही थीं। पहाड़ी पर खड़े होकर जहाँ तक देख पा रही थी सब तरफ यही नज़ारा था। यहाँ खड़े होकर यह कल्पना तक कर पाना मुश्किल था कि किसी समय यहाँ घने जंगल हुआ करते थे। लेकिन हमारी पृथ्वी के इतिहास में ऐसा कई बार हुआ है और आगे भी होता रहेगा। यह जानती हूँ, फिर भी हैरानी होती है।

पास ही एक तख्ती लगी थी। उस पर लिखा था कि आज से 18 करोड़ साल पहले इस इलाके में उष्ण और काफी नम जलवायु थी। यहाँ घने जंगल थे। चीड़, देवदार और रेड वुड यहाँ खूब उगते थे। भूगर्भ तालिका के हिसाब से यह जुरासिक युग माना जाता है। इसी समय पृथ्वी पर पक्षियों का विकास हुआ और डाइनोसॉर पाए जाते थे।

आकल वुड पार्क में कोई 18 जीवाश्म हैं। इनमें से सबसे बड़ा तना 13 मीटर लम्बा और 1 मीटर चौड़ा है। टीन की छत के नीचे प्लास्टिक की चादर के केबिन में इन्हें बन्द कर रखा है। गर्मी और धूप से प्लास्टिक पीला पड़ गया है, जगह-जगह से टूट रहा है और भीतर झाँकने पर कुछ भी ठीक से दिखाई नहीं देता।

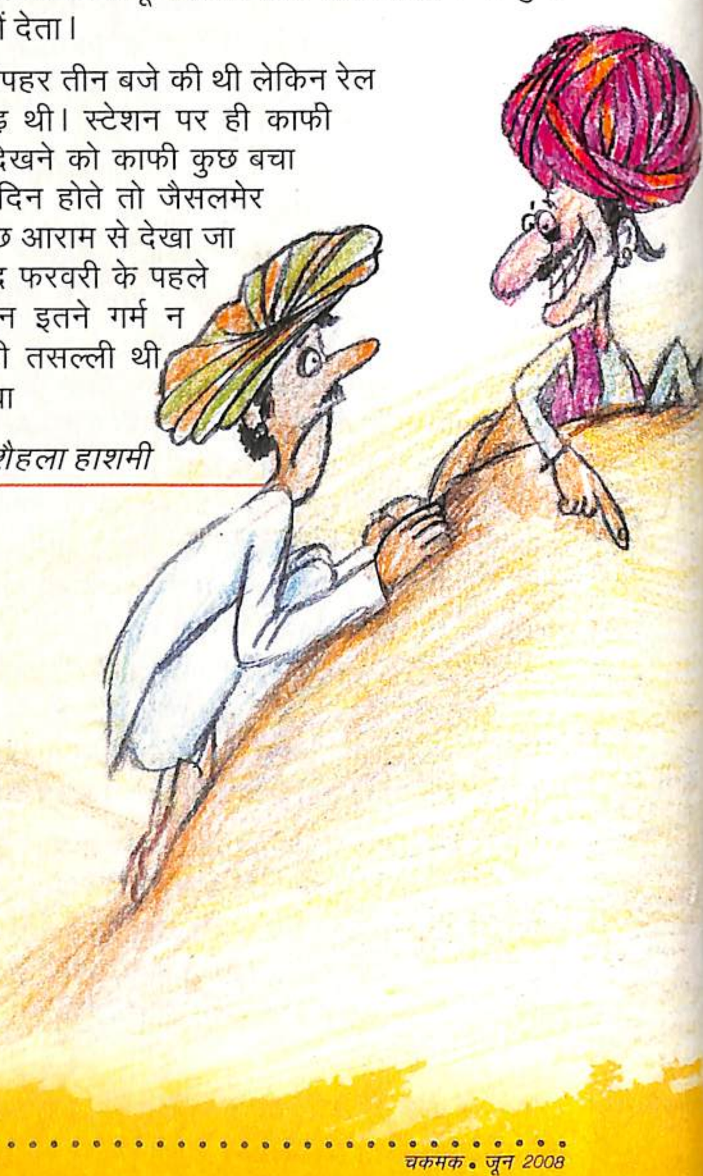
आकल वुड फॉसिल (जीवाश्म) पार्क

अगले दिन सुबह ही हम वुड फॉसिल (जीवाश्म) पार्क देखने निकल गए। यह जैसलमेर के पूर्व में कोई 17 किलोमीटर की दूरी पर है। आकल के रास्ते में मवेशियों का एक बाड़ा दिखा। जीप के ड्राईवर ने बताया कि सूखे की वजह से घास बिल्कुल नहीं है। जानवर मर रहे हैं। किसी संस्था ने सरकार की मदद से जानवरों को चारा खिलाने के लिए बाड़ा बनाया है। गरीब किसान अपने मवेशियों को यहाँ छोड़ जाते हैं। फिर इन जानवरों पर उनका कोई अधिकार नहीं रहता।

वे मवेशी क्या बस कंकाल भर थे। बाड़े में 3-4 मवेशी मरे हुए थे। भयावह था उन्हें देखना। मेरी नज़रों से अभी सम के दम तोड़ते ऊँट की छवि हटी नहीं थी और ये...। रास्ते में कई और जगहों पर मरे जानवर नज़र आए। वे तो जीव थे। हमारे यहाँ तो इन्सान भी कई बार इन्हीं हालातों में दम तोड़ देते हैं।

अगले दिन गाड़ी दोपहर तीन बजे की थी लेकिन रेल टिकट में कुछ गड़बड़ थी। स्टेशन पर ही काफी वक्त चला हो गया। देखने को काफी कुछ बचा था। अगर कुछ और दिन होते तो जैसलमेर और आसपास सब कुछ आराम से देखा जा सकता है। और शायद फरवरी के पहले हफ्ते में आते तो दिन इतने गर्म न लगते। पर खैर इतनी तसल्ली थी कि अगली बार तो आया ही जा सकता है।

शैहला हाशमी



एक लतीफा – सीधा थार-रेगिस्तान से...

एक बार की बात है। एक आदमी जिसका नाम था बिरधीचन्द, ऊँट पर बैठकर अपने घर जा रहा था। रास्ते में रेत का तेज़ तूफान आया। इस वजह से वो पिछले दो दिन से अपने घर से कुछ कोस दूर अटका पड़ा था। कुछ देर में तूफान रुक गया। अब वह फटाफट अपने घर पहुँचना चाहता था। आखिर घर में सब उसकी राह देखते होंगे। रेत के ऊँचे-ऊँचे टीलों के बीच से होती हुई उसकी सवारी शान से चली जा रही थी। तभी उसने देखा कि सामने के टीले पर एक गोल टोपी रखी है। इस सुनसान बियाबान में कौन अपनी टोपी छोड़ गया। बिरधीचन्द ने आस-पास नज़रें दौड़ाईं। दूर-दूर तक कोई नहीं दिखा। बिरधीचन्द ने सोचा चलो टोपी उठा लेते हैं। लगता है यहाँ से गुज़रता कोई मुसाफिर इस बियाबान में अपनी नई-नवेली टोपी गिरा गया है।

घड़सीसर का तालाब

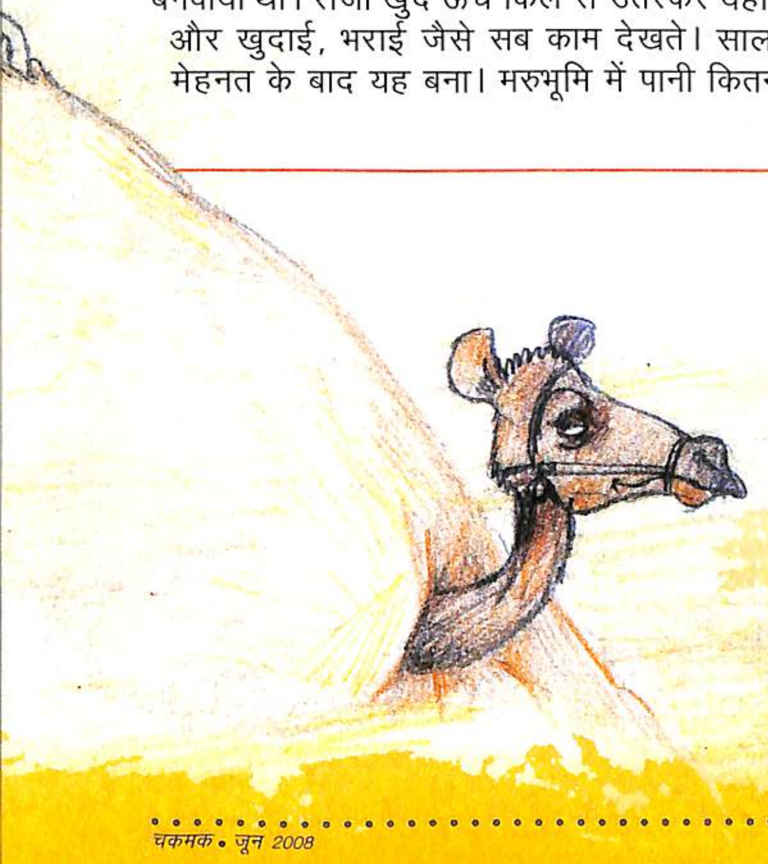


चित्र: दिलीप चिंचालकर

नक्शे में जितना बड़ा शहर जैसलमेर है, लगभग उतना ही बड़ा तालाब घड़सीसर है। घड़सीसर न होता तो जैसलमेर भी न होता। लगभग 800 साल पुराने इस शहर के कोई 700 साल इस तालाब से जुड़े हैं। 3 मील लम्बे और 1 मील चौड़े आगर (जहाँ पानी इकट्ठा होगा) वाले इस तालाब का आगौर (जहाँ से पानी आएगा) 120 वर्ग मील क्षेत्र में फैला है। इसे आँखें नाप नहीं पाती हैं। जैसलमेर के राजा महारावल घड़सी ने इसे 1335 में बनवाया था। राजा खुद ऊँचे किले से उतरकर यहाँ आते और खुदाई, भराई जैसे सब काम देखते। सालों की मेहनत के बाद यह बना। मरुभूमि में पानी कितना भी कम बरसे घड़सीसर का आगौर वहाँ की एक-एक बूँद को समेटकर तालाब को लबालब भर देता। एक तालाब भरता तो अतिरिक्त पानी दूसरे तालाब में जाता फिर तीसरे, फिर चौथे... । इस तरह नौ तालाब भरने के बाद जो पानी बचता वो छोटे-छोटे कुएँनुमा कुण्डों में भरता।

यह देश का सबसे गरम और सूखा इलाका है। यहाँ साल में लगभग दस दिन ही पानी बरसता है। लेकिन यहाँ के लोगों ने दस दिनों की बारिश में करोड़ों बूँदों को देखा। घर-घर, गाँव-गाँव शहरों तक में इन्हें इकट्ठा करने के तरीके खोजे और अपने लिए साल भर के पानी का इन्तज़ाम किया। चक मक

(साभार: *आज भी खरे हैं तालाब* लेखक: अनुपम मिश्र)



बिरधीचन्द ऊँट से उतरा और टोपी की तरफ बढ़ा। लेकिन जैसे ही उसने टोपी उठाई उसका मुँह खुला का खुला रह गया। टोपी के नीचे एक आदमी का सर जो था। वो यह देखकर चक्कर में पड़ गया। उसने आव देखा ना ताव और वह जल्दी-जल्दी टोपी के चारों तरफ की रेत अपने हाथों से खोदने लगा। कुछ ही मिनट की खुदाई में एक आदमी का पूरा का पूरा चेहरा रेत में से बाहर निकल आया। यह देखकर बिरधीचन्द को जोश आ गया और वो और दम-खम लगाकर रेत हटाने लगा।

लेकिन इस बीच जिस आदमी का चेहरा रेत में से बाहर निकला था वह ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगा, "भाई सां हाथों से काम नहीं चलेगा फावड़े लाओ फावड़े।" बिरधीचन्द ने रेत हटाना छोड़कर पूछा, "क्यों भाई ऐसी भी क्या बात है?" यह सुनकर रेत में दबा आदमी बोला, "मैं भी ऊँट पर बैठा हूँ।" चक मक



जैसलमेर

रात में चमकता किला

इस लेख का पहला हिस्सा *चकमक* के मई अंक में छपा था। प्रस्तुत है बाकी हिस्सा...

और फिर आया दिवाली का दिन। उस दिन हम हिन्दुस्तान की आखिरी सीमा (बॉर्डर) देखने गए। बॉर्डर जैसलमेर से कोई 100-130 किलोमीटर दूर है। रास्ते में पहले आता है – रामगढ़। यह एक छोटा-सा कस्बा है। यहीं से बी.एस.एफ. (सीमा सुरक्षा बल) का इलाका शुरू हो जाता है। जैसलमेर से करीब 110 किलोमीटर दूर है तनोट। यहाँ भी बी.एस.एफ. की एक बड़ी चौकी है। यहाँ से सीमा काफी नज़दीक है। सीमा पर तैनात इन जवानों के साथ हमने सीमारेखा देखी। अब तो सारी सीमा पर तारबन्दी हो गई है। एक तरफ से दूसरी तरफ जाना बहुत मुश्किल है। लेकिन देखो तो दोनों ओर एक जैसा ही सब कुछ दिखता है। ज़मीन एक, धूप एक, रूखापन एक, धूल भरी हवाएँ एक... देखकर लगा कि फिर अलग क्या है? पानी की किल्लत और ज़रूरतें दोनों तरफ एक जैसी हैं। अब तो जानवर भी दूसरी तरफ घास चरने नहीं जा सकते।

बॉर्डर से वापस आते हुए हमने किशनगढ़ का किला देखा। बहुत ही सुन्दर किला है। हालाँकि साफ-सफाई के अभाव में अब यह बर्बाद हो रहा है। यहाँ हमें किशनगढ़ के आसपास के गाँवों के कुछ लोग भी मिले। वे बी.एस.एफ. वालों से इजाज़त माँग रहे थे जिससे उनके मवेशी आराम से चर सकें। कुछ समय से बी.एस.एफ. की चौकी और सुरक्षा व्यवस्था बढ़ गई है। इस कारण मवेशियों को बॉर्डर के ज़्यादा पास नहीं जाने देते हैं। लेकिन गाँव वाले कह रहे थे कि अच्छी घास उस इलाके में ही ज़्यादा उगती है। देशों की लड़ाई का नुकसान सिर्फ इंसानों को ही नहीं, जानवरों को भी होता है।

बॉर्डर की यात्रा में हमारे साथ थे बन्नेसिंह जी। वे राजस्थान पुलिस में काम करते हैं और जैसलमेर के रहने वाले हैं। बन्नेसिंह जी ने हमें कई मज़ेदार किस्से सुनाए। उनका कहना है कि पूरे जैसलमेर में एक भी ऐसा शख्स ऐसानहीं जिसे वे ना जानते हों। उन्होंने बताया कि एक ऊँट की कीमत 15-20 हज़ार होती है। और एक आदमी के पास यहाँ 100 ऊँट भी होते हैं। बहुतों के पास तो उससे भी ज़्यादा। तो मैंने पूछा कि इसका मतलब तो यहाँ लखपति, करोड़पति लोग रहते हैं? इसके जवाब में बन्नेसिंह ने जो कहानी सुनाई वो मैं तुम्हें भी सुनाता हूँ....



लिटिल टेरेरिस्ट
उर्फ नन्हा आतंकी



अश्विन कुमार की फिल्म *लिटिल टेरेरिस्ट* कहानी है तुम्हारी ही उमर के एक लड़के जमाल की। जमाल का गाँव हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की सीमा पर बसा है। जमाल क्रिकेट का शौकीन है। एक दिन जमाल अपने दोस्तों के साथ क्रिकेट खेल रहा होता है कि उसकी गेंद सीमा पार हिन्दुस्तान में चली जाती है। जमाल उसे लेने जब कँटीले तारों को पार कर उस तरफ जाता है तो सुरक्षा प्रहरी उसे आतंकवादी समझ कर उस पर गोलियाँ चलाते हैं। जमाल डर कर एक टीले की ओट में छिप जाता है। यहीं उसे उस गाँव में रहने वाले मास्टर जी मिलते हैं। मास्टर जी उसे अपने साथ घर ले आते हैं। और बताते हैं कि जब हिन्दुस्तान और पाकिस्तान एक मुल्क थे तब ये दोनों गाँव भी एक थे। मास्टर जी उसे यह भी बताते हैं कि मैंने भी अपने बचपन में उसी पेड़ के नीचे क्रिकेट खेली है जहाँ तुम खेलते हो। रात में मास्टर जी उसे बारूदी सुरंगों से बचाते हुए उसके गाँव छोड़कर आते हैं। जमाल वापिस अपने गाँव, अपने घर पहुँच जाता है। और मास्टर जी को हमेशा याद रखता है।





लिटिल टेरेरिस्ट को 2005 में ऑस्कर पुरस्कारों के लिए नामांकित किया गया है। इस फिल्म की लम्बाई भले ही 15 मिनट की हो लेकिन इसकी कहानी दिल को कहीं गहरे तक छू लेने वाली है। रेगिस्तान से एक और तोहफा है यह फिल्म और वो भी तुम्हारे लिए।

मेरे एक चाचा सां थे। ऐसे ही एक लखपति। नाम था ठोकरदास। उन्हें पड़ोस के एक गाँव से कुछ बकाया पैसा लेना था। गाँव दूर था तो वे सुबह-सुबह मुँह धोकर अँधेरे ही घर से निकल गए। ठोकरदास सां जब दूसरे गाँव पहुँचे तो दोपहर हो रही थी। पैसा तो उन्होंने वापस ले लिया, पूरे 2 लाख लेकिन इस बीच मौसम कुछ बिगड़ने लगा था। तूफान आने की सम्भावना थी। पर ठोकरदास सां पैसे के साथ दूसरे गाँव में नहीं रुकना चाहते थे तो वे वापिस चल पड़े। उन्हें अपने गाँव का रास्ता अच्छी तरह से याद था और यकीन था कि रात तक सही सलामत पहुँच जाएँगे। शाम होते-होते तूफान ज़ोर पकड़ने लगा। ऐसे धूल के तूफान में रेगिस्तान में क्या हालत होती है मालूम है? रेत के टीले अपनी जगह बदल लेते हैं। तो ऐसे ही रेत के टीलों ने अपनी जगह बदल ली और ठोकरदास सां अपने गाँव का रास्ता भूल गए। अगले तीन दिन वो रेगिस्तान में भटकते रहे और आखिर में प्यास ने उनकी जान ले ली। उस वक्त उनके और गाँव के बीच सिर्फ एक रेत का टीला था। बाद में उनके पास से 2 लाख रुपए मिले जो वे साथ लेकर आ रहे थे।

बन्नेसिंह जी ने यह कहानी सुनाकर हमसे पूछा कि बताओ कौन हुआ लखपति? ठोकर सां के पास तो इतने रुपए थे लेकिन पानी से ज़्यादा कीमती और कोई चीज़ नहीं है प्यारे! और इस यात्रा में हमें भी समझ आ गया कि दुनिया की सबसे कीमती चीज़ पानी है। तेज़ धूप में वहाँ दूर से रेत में पानी दिखता है। पास पहुँचो तो गायब। इसे मृग मरीचिका कहते हैं। इसके पीछे दौड़ते रहो, वो कभी हाथ नहीं आती। और हम, जिन्हें पानी आसानी से नसीब हो जाता है, इसकी अहमियत कभी समझ नहीं पाते। हाँ, जैसलमेर ज़रूर तीन दिन में यह समझा देता है!

पी एम लाड

मुश्किल में परिन्दे

इस महीने की 5 तारीख को पर्यावरण दिवस पड़ता है। यह एक दिन है जब हम सोचें कि हमारे आसपास के जीवों, पेड़-पौधों की सेहत कैसी है। इसलिए भी कि इनके दुरुस्त रहने से हमारी दुरुस्ती भी जुड़ी है। एक ऐसी दुनिया की कल्पना करो जिसमें हमारे अलावा न तो कोई जीव होगा, न पेड़-पौधे।

इस एक दिन हमें इत्मीनान से सोचना है कि हमारे किसी काम से हमारे आसपास को, हमारे पर्यावरण को कोई नुकसान तो नहीं पहुँच रहा।


भुजंगा या कोतवाल

यूँ तो जल-थल के हज़ारों जीव हमारी कुछ गतिविधियों के कारण मुश्किल में हैं। पर मैं इस बार छह बहुत ही आम परिन्दों के बारे में बात करूँगा। तीन ऐसे जो इंसानी गतिविधियों के कारण खत्म हो रहे हैं। और तीन वे जो फल-फूल रहे हैं क्योंकि उन पर हमारी गतिविधियों का प्रभाव बहुत ही कम पड़ रहा है।

संकट में परिन्दे

पहले तीन-चार वे परिन्दे जो संकट में हैं। समय रहते हम अगर नहीं चेते तो शायद हमारे पास इनके फोटो ही रह जाएँगे। ये परिन्दे हैं – गौरैया, मोर, भुजंगा। इसी कॉलम में हम पहले सारस और


गौरैया (नर)


गौरैया (मादा)


मोर

खरमौर के बारे में भी बात कर चुके हैं।

गौरैया हमारे घरों में या उसके आसपास रहती है इसलिए हमारी गतिविधियों का उस पर सीधा असर पड़ता है। गौरैया प्रमुख रूप से अनाज ही खाती है। इसके बच्चे लगभग पन्द्रह दिनों में ही उड़ने लगते हैं। इसके लिए वह उन्हें कीड़े-मकोड़ों का भोजन देती है। कीड़े-मकोड़े खाने से उन्हें पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन मिल जाता है। फसलों में तथा घरों में भी हम तरह-तरह के कीटनाशकों का छिड़काव करते हैं। ये कीटनाशक कीड़ों के माध्यम से गौरैया तक पहुँचते हैं और कई बार उसकी मौत का कारण बनते हैं।

बचपन में मैं अकसर देखता था कि आँगन में सूखते अनाज पर गौरैयों के झुण्ड आ बैठते थे। आजकल हमारे भोजन से जुड़ी कई चीज़ें डिब्बा बन्द मिलने लगी हैं। इसलिए आँगनों में गौरैया के लिए मिलने वाला भोजन अब लगभग खत्म हो गया है। यही हाल मोर और भुजंगा का भी है। हाल ही में मुरैना में सैंकड़ों की संख्या में मोर मृत पाए गए। वजह थी – कीटनाशक युक्त कीड़ों को खाना। खासकर कपास की खेती में इस्तेमाल होने वाले कीटनाशकों ने मोरों को बहुत प्रभावित किया है। भुजंगा का भोजन भी कीड़े-मकोड़े हैं। कीटनाशक कीड़ों को प्रभावित करते हैं और फिर यही मृत या जीवित कीड़े भुजंगा को।


खरमौर


तोते


कोयल (नर)

तोते, कोयल और फाख्ता तीन ऐसे पक्षी हैं जिन पर हमारी गतिविधियों का ज़्यादा प्रभाव नहीं पड़ा है। एक तो ये तीनों पक्षी कीड़े-मकोड़े नहीं खाते हैं। और तोते तथा कोयल ज़मीन पर बहुत कम ही बैठते हैं। फाख्ता अनाज खाती है। तोते और कोयल ऊँचे पेड़ों पर लगे ताज़े फल। इसलिए कीटनाशक इन तीनों से फिलहाल दूर हैं।


फाख्ता

सभी फोटोः पी एम लाड

पंजीयन क्र. 50309/85 के अन्तर्गत भारत सरकार के समाचार पत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा पंजीकृत। डाक पंजीयन क्र. म.प्र./261/ भोपाल/200



नज़ीर अकबराबादी

आगरे की ककड़ी

पहुँचे न इसको हरगिज़ काबुल दरे की ककड़ी।
ने पूरब और ने पच्छिम, खूबी भरे की ककड़ी।
ने चीन के परे की और ने वरे की ककड़ी।
दक्खिन की और न हरगिज़, उससे परे की ककड़ी।

क्या खूब नर्मो नाज़ुक, इस आगरे की ककड़ी।
और जिसमें खास काफिर, इस्कन्दरे की ककड़ी।।

मीठी है जिसको बर्फी कहिए गुलाबी कहिए।
या हल्के देख उसको ताज़ी जलेबी कहिए।
तिल शकरियों की फाँकें, अब या इमरती कहिए।
सच पूछिए तो इसको दनदाने मिश्री कहिए।

क्या खूब नर्मो नाज़ुक, इस आगरे की ककड़ी।
और जिसमें खास काफिर, इस्कन्दरे की ककड़ी।।

छूने में बर्गे गुल है, खाने में कुरकुरी है।
गर्मी के मारने को एक तीर की सरी है।
आँखों में सुख कलेजे ठण्डक हरी-भरी है।
ककड़ी न कहिए इसको, ककड़ी नहीं परी है।

क्या खूब नर्मो नाज़ुक, इस आगरे की ककड़ी।
और जिसमें खास काफिर, इस्कन्दरे की ककड़ी।।

स्वामी रैक्स डी रोज़ारियो प्रकाशक, मुद्रक सी. एन. सुब्रह्मण्यम की ओर से निदेशक, एकलव्य फाउण्डेशन द्वारा एकलव्य, ई-10 शंकर नगर, 61/2 बस स्टॉप के पास, भोपाल-462016, (म.प्र.) से प्रकाशित तथा आर. के. सिक्युप्रिन्ट प्रा. लि. प्लॉट नम्बर 15-बी, गोविन्दपुरा इंडस्ट्रियल एरिया, गोविन्दपुरा, भोपाल - 462021 (फोनः 0755 - 2687589) से मुद्रित। सम्पादकः सुशील शुक्ल।